आचार्य कालक

और

मजदूरिन

का

सरल अध्ययन

लेखक :

तेजसिंह डांगी एम. ए., बी. एड.



दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी

जयपुर जोधपुर

आचार्य कालक
और
मजदूरिन

(दो लघु-उपन्यास)

विष्णु अम्बालाल जोशी कृत

का

एक सरल अध्ययन

लेखक

तेजसिंह डांगी एम. ए. बी. एड.

प्रधानाध्यापक

राजकीय उच्च विद्यालय,

परवतसर (जिला नागौर)



प्रकाशक

दी स्टूडेन्टस बुक कम्पनी

प्रकाशकः—
दी स्टूडेन्ट्स बुक कम्पनी
जयपुर जोधपुर

विषय सूची

मुद्रकः—
नवल प्रिंटिंग प्रेस
त्रुरूत्रों का रास्ता,

१. आचार्य कालक

उपन्यास–साहित्य का इतिहास :—

हिन्दी-उपन्यास-साहित्य का इतिहास, नाटक-साहित्य की भाँति अधिक पुराना नहीं है। इसका उद्‌भव और विकास केवल आधुनिक युग तक ही सीमित है। बहुत प्राचीन काल से ही नाटक संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि रही है, इसलिये हिन्दी-साहित्य को नाटक के मूल तत्व संस्कृत साहित्य से प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुए। उपन्यास की सत्ता संस्कृत साहित्य में नहीं के बराबर रही। केवल कादम्बरी में कथानक होने के कारण कई साहित्यकार उसमें उपन्यास के गुण खोजने की चेष्टा करते हैं, परन्तु कादम्बरी काव्य के अधिक निकट है, उसमें औपन्यासिक तत्वों का वस्तुतः अभाव है। इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी को उपन्यास संस्कृत-साहित्य की देन नहीं है।

अब प्रश्न उठता है : हिन्दी साहित्य में फिर उपन्यास प्रणाली कहाँ से आई ? उपन्यास हिन्दी गद्य के लिये पाश्चात्य साहित्य का एक नवीन वरदान है। उपन्यास पश्चिम की देन है, जो कि कहीं सीधे रूप से और कहीं बंगला-साहित्य के माध्यम से प्राप्त हुई है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होने हिन्दी साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को छुआ और अपनी साहित्यिक-दक्षता का परिचय दिया। उन्होंने साहित्य के प्रत्येक अंग को वरदान दिया, परन्तु उपन्यास-साहित्य उसके प्रसाद से वञ्चित रहा। ऐसी बात नहीं थी कि उनका ध्यान इस ओर था ही नहीं। उनको उपन्यास-लेखन की चिन्ता थी और हिन्दी साहित्य में उपन्यासों का अभाव उनको खटक भी रहा था, किन्तु दुर्दैव ने उनको इतना अवसर ही नहीं दिया और उनको छत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही उठा लिया। उनको उपन्यास लेखन की चिन्ता थी, जैसा कि उनके पत्र की निम्न पंक्तियों

भाषा में अब कुछ नाटक बन गये हैं; वैसे अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ व गोस्वामी राधाचरणजी कोई भी उपन्यास लिखें तो उत्तम हो।"

भारतेन्दु की इस उत्कट अभिलाषा से अनेक लेखक प्रेरित हुये और उन्होंने बड़े उत्साह से उपन्यास लिखने की चेष्टा की। भारतेन्दुजी की प्रसिद्ध पत्रिका 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' में 'मालती' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसमें घटना-वैचित्र्य के साथ साथ प्रकृति का रोचक व अलंकारपूर्ण वर्णन था। इसी प्रकार 'सार सुधानिधि' नामक पत्र में 'तपस्विनी' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ।

इसी युग में लाला श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा-गुरु' नामक उपन्यास की रचना की। इसे हिन्दी-साहित्य का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास कहा जा सकता है। यद्यपि इस उपन्यास में एक उपन्यास की भांति कथा का स्वाभाविक विकास व प्रवाह नहीं है, तथा नीतिपूर्ण उपदेशों से रस में आघात पहुंचा है, संस्कृत, फारसी व अंग्रेजी के उद्धरण नीरसता उत्पन्न करते हैं तथापि हिन्दी साहित्य का प्रथम मौलिक उपन्यास होने के नाते इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ऐसा ही उपन्यास 'सौ अजान और एक सुजान' बालकृष्ण भट्ट का है। यह उपन्यास भी उपदेशों, नीतिपूर्ण श्लोकों तथा दोहों के बोझ से बोझिल है। इस उपन्यास की दो बड़ी विशेषतायें हैं—एक तो देश-काल का पूर्ण ध्यान तथा दूसरा यथार्थ का चित्रण। भट्टजी ने सूक्ष्म दृष्टि से समाज की प्रत्येक परिस्थिति का अवलोकन किया और उसका यथार्थ चित्रण उन्होंने अपने इस उपन्यास में अंकित किया। शैली पर संस्कृत की अलंकृत शैली का पूर्ण प्रभाव है तथा कहीं कहीं व्यंग्यों व लक्षणा-प्रधान शैली के कारण उपन्यास में रोचकता आ गई है। इसी समय ठाकुर जगमोहनसिंह ने 'श्यामा स्वप्न' लिखा जो कि उपन्यास की अपेक्षा काव्य के अधिक निकट है।

भारतेन्दुकालीन उपन्यासों में राधाकृष्णदास के 'निःसहाय हिन्दू' नामक उपन्यास को नहीं भुलाया जा सकता। यह उस काल की सर्वोत्कृष्ट

इसमें हिन्दू मुस्लिम एकता का सन्देश भी दिया गया है । राधाकृष्णदासजी का दृश्य-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं यथार्थ है। उपन्यास के पात्र सजीव हैं तथा वार्तालापों में एक प्रकार की नाटकीयता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस उपन्यास में आधुनिक उपन्यास-कला के अंकुर विद्यमान हैं।

भारतेन्दु-काल में उपन्यास-लेखन के केवल ये प्रयास ही किये गये। लेखकों ने नाटक व निबन्ध साहित्य को जितना धनी व समृद्धिशाली बनाया, उतना उपन्यास साहित्य को नहीं। इस समय हिन्दी की अपेक्षा बंगला साहित्य उपन्यास की दृष्टि से अधिक सम्पन्न था, इसलिये कई लेखकों ने बंगला के उत्कृष्ट सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का अनुवाद करके हिन्दी उपन्यास-साहित्य की रंकता को दूर करने का प्रयास किया। बाबू गदाधर ने 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद किया, बाबू राधाकृष्णदास ने 'स्वर्णलता' व 'मरता क्या न करता' का अनुवाद किया। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने 'राजसिंह' 'इन्दिरा' तथा 'राधारानी' नामक उपन्यासों को अनूदित किया। इन अनुवादों से स्वतन्त्र उपन्यास-लेखन की प्रेरणा प्राप्त हुई।

अनुवादों की यह परम्परा भारतेन्दु-युग के पश्चात् भी निरन्तर चलती रही। बंगला से ही नहीं; अपितु अन्य भाषाओं-जैसे अंग्रेजी तथा उर्दू से भी अनुवाद प्रकाश में आये। बाबू रामकृष्ण वर्मा ने अंग्रेजी तथा उर्दू के कितने ही उपन्यासों का अनुवाद किया, जिनमें 'पुलिस वृत्तान्तमाला' 'ठग-वृत्तान्त माला' व 'अकबर' प्रसिद्ध है। बाबू गोपालराम गहमरी ने बंगला के गार्हस्थिक उपन्यासों की ओर ध्यान दिया तथा 'बड़ा भाई' 'दो बहिन' 'तीन पतोहू' व 'नए बाबू' का हिन्दी अनुवाद किया। इस समय बंगला के प्रमुख व चोटी के उपन्यासकारों की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद से हिन्दी साहित्य समृद्ध होने लगा। बंकिमचन्द्र, रवीन्द्र बाबू, शरत्चन्द्र और चारुचन्द्र सरीखे उपन्यासकारों के उपन्यासों के अनुवाद होने लगे। रवीन्द्र बाबू के प्रसिद्ध उपन्यास 'आँख की किरकिरी' का अनुवाद इसी समय हुआ। अंग्रेजी से 'सैना' 'लन्दन रहस्य' व 'टाम काका की कुटिया' नामक उपन्यास अनूदित हुए। रामचन्द्र वर्मा ने मराठी के 'छत्रसाल' नामक उपन्यास का सुन्दर व उत्कृष्ट [illegible] किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक काल अनुवादों का काल रहा है और हम इस युग को अनुवाद-युग कह सकते हैं। अन्य भाषाओं से अनुवाद करके ही साहित्यकार हिन्दी भाषा की झोली भर रहे हैं। यह मानी हुई बात है कि उस समय के उपन्यासों में मौलिकता नहीं थी, वे केवल दूसरी भाषाओं से अनुवाद ही थे, परंतु यह निश्चित है कि आधुनिक उपन्यास साहित्य की आधारभूमि उसी समय तैयार हुई और उन्हीं अनुवादों की प्रेरणा से आज का हमारा उपन्यास-साहित्य मौलिक व स्वतन्त्र रूप से विकसित हो सका।

हिन्दी में मौलिक उपन्यास को पुनर्जीवन श्री देवकीनन्दन खत्री ने दिया। इस उपन्यास साहित्य रूपी विशाल वितान के आधारस्तम्भ खत्रीजी के ही उपन्यास हैं। उन्होंने मौलिक उपन्यासों की परम्परा को पुनः जीवित किया। खत्रीजी के उपन्यासों में यद्यपि पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं है, भावों की सजीवता नहीं है, भाषा का शृंगार नहीं है, वर्णन की स्वाभाविकता नहीं है व कथानक में कलात्मक संगठन नहीं है, फिर भी कथानक में ऐसी अद्भुत विचित्रता, मनोरञ्जकता, व प्रवाहमयता है कि पाठक तन्मय हो उठता है। 'चन्द्रकान्ता संतति' इनकी हिन्दी साहित्य को एक अद्वितीय व अमूल्य देन है। खत्रीजी के उपन्यास घटनाप्रधान हैं, वे अय्यारी व तिलस्म से पूर्ण हैं। 'काजर की कोठरी' साहसिक उपन्यास है तो 'कुसुम कुमारी' खूनी उपन्यास है। खत्रीजी की कल्पनाशक्ति बड़ी प्रखर है। इनके उपन्यासों की भाषा बोधगम्य है।

घटनाप्रधान उपन्यासों में जासूसी उपन्यास भी होते हैं। इन उपन्यासों का प्रचलन हिन्दी में गोपालराम गहमरी ने किया। गहमरीजी भी ऐसे ही उपन्यासकार थे तथा उन्होंने 'मेम की लाश' व 'जासूस की जवानी' नामक जासूसी उपन्यास भी लिखे। हिन्दी को जासूसी उपन्यास अंग्रेजी की देन है।

हैं। गोस्वामीजी के उपन्यास प्रेमप्रधान हैं। उनके द्वारा चित्रित प्रेम अत्यन्त वासनामूलक व अश्लील है। उनके कुछ उपन्यासों के नाम यह हैं—जैसे तारा, रजिया बेगम, राजकुमारी, गुलबहार इत्यादि। इनके उपन्यासों की नारियां नारीत्व से दूर वासना की जीती-जागती पुतलियां हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी गोस्वामीजी को अधिक सफलता नहीं मिली है।

इसके बीच द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' 'अधखिलाफूल' नामक दो उपन्यास लिखे। ये उपन्यास भाषा का आदर्श उपस्थित करने के दृष्टिकोण से लिखे गये थे, इसलिये उपन्यास-कला का उत्कर्ष इनमें दिखाई नहीं पड़ता। श्री लज्जाराम मेहता ने भी सामाजिक सुधार भावना से प्रेरित होकर 'आदर्श दम्पति' 'बिगड़े सुधार', आदर्श हिन्दू, नामक उपन्यास लिखे, परन्तु इनमें भी उपन्यास-कला का विकास नहीं हो पाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन दोनों लेखकों के लिये ठीक ही कहा है—"ये दोनों महाशय वास्तव में उपन्यासकार नहीं हैं। उपाध्यायजी कवि हैं और मेहताजी पुराने अखबारनवीस।"

"अब तक का हिन्दी उपन्यास साहित्य घटनाओं के घटाटोप में सांस ले रहा था। उसमें जीवन एवं चेतना के लक्षण दृष्टिगत नहीं हो रहे थे। वह वास्तविक जगत् से दूर लेखकों के कल्पना-हिन्दोल पर कलाबाजियां खेलकर चमत्कृत करने का साधनमात्र ही बन रहा था, उसमें न तो कला की प्राञ्जलता थी, न चरित्रों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या और न मानवीय द्वन्द्वों का वास्तविक निरूपण। एक प्रकार से उसका कंकालमात्र ही बन पाया था, उसमें न तो रक्त-प्रवाह ही हो पाया था और न रक्त-संचार। उसी समय प्रेमचन्दजी ने अपनी दिव्य ज्योत्स्ना से उसको कांतिमान बनाया और अपने हृदय का रस देकर उसमें जीवन का संचार किया।"

प्रेमचन्दजी को उपन्यास-सम्राट कहा गया है। उनका स्थान हिन्दी साहित्य में वही है, जो कि आकाश में ध्रुवतारे का है। उन्होंने उपन्यास-साहित्य को एक नवीन रूप दिया। उनकी प्रतिभा प्रखर व अनुभूतियां दी। प्रेमचन्द जी ने आधुनिक उपन्यास के पथ का स्वयं निर्माण किया, वे तिलस्म और ऐयारी के चक्कर में नहीं पड़े रहे। उन्होंने उपन्यासों को इन ऐयारी और

तिलस्म के दूषित वातावरण से निकाल कर जीवन की सामान्य एवं स्वच्छ भूमि पर प्रतिष्ठित किया। उनसे पूर्व के उपन्यास केवल घटनाओं के पुञ्ज-मात्र थे, जिनके नीचे भाव एवं चरित्र कराहते-से दृष्टिगत होते थे। "प्रेमचन्द ने घटनाओं को चरित्रों की अनुगामिनी एवं भावों की सेविका के रूप में उपस्थित किया। उनके पात्र वातावरण एवं परिस्थितियों के दास नहीं, अपितु स्वयं उनकी स्रष्टा हैं।" उनके उपन्यासों में मानवीय भावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

प्रेमचन्दजी ने अपने उपन्यासों में मानव जीवन के मार्मिक चित्र अंकित किये हैं। वे उपन्यास को मानव जीवन का विश्लेषण मानते हैं। उन्होंने लिखा भी है—"मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ।" मानव जीवन और उसकी अभिव्यक्ति यही उनके उपन्यासों का केन्द्रबिन्दु है। प्रेमचन्दजी अपने उपन्यासों में हमारे समक्ष एक समाज-सुधारक के रूप में आते हैं। उनकी दृष्टि केवल उच्च वर्ग पर ही नहीं गई, बल्कि शोषित, पीड़ित तथा निम्न वर्ग के भी उन्होंने मार्मिक व सांगोपांग चित्र अंकित किये। समाज के झूठे आदर्शों को, अन्धी धार्मिकताओं रूढ़ियों को कुरीतियों को, व पाखण्ड-पूर्ण मान्यताओं को उन्होंने नग्न रूप में हमारे समक्ष रखा। उन्होंने धर्म के ठेकेदारों, पाखण्डी मठाधीशों, स्वार्थी सुधारकों, नृशंस अधिकारियों, संपन्न जमींदारों व पूंजीपतियों के कुकृत्यों को हमारे सामने खोल कर रख दिया। उन्होंने हमारी उन कुरीतियों और रूढ़ियों का ज्ञान कराया जो कि हमारे समाज को दीमक की भांति भीतर ही भीतर खा रही थीं। उनका हृदय किसानों और मजदूरों की पीड़ा से, विधवाओं की व्यथा से वेश्याओं की विवशता से और भिक्षुकों की दीनता से अधिक पीड़ित था।

उन्होंने अपने उपन्यासों में जीवन के यथार्थ चित्र खींचे, परन्तु उनको आदर्शों की ओर प्रतिष्ठित किया इस प्रकार उनके उपन्यासों में यथार्थवाद व आदर्शवाद दोनों का समावेश है जिसको उन्होंने आदर्शों-मुखी यथार्थवाद की संज्ञा दी है। समाज में वे एक प्रकार की क्रान्ति लाने का स्वप्न देख रहे थे, इसी कारण उनके उपन्यासों में आदर्शवादिता झलकती है। उनका साहित्य केवल साहित्य के लिये नहीं था; बल्कि उनका साहित्य जीवन के लिये था। प्रेमचन्दजी की महानता इसी में है कि उन्होंने चरित्रों की [illegible]

द्वारा आदर्शों की प्रतिष्ठा की।

उनका पहला उपन्यास 'सेवासदन' है। इस उपन्यास में उन्होंने दहेज प्रथा के दुष्परिणाम, पुलिस के अत्याचारों, वेश्याओं की स्थिति का चित्रण किया। 'प्रेमाश्रम' में किसान और जमींदार के अधिकार-युद्ध का मार्मिक चित्रण है। प्रेमचन्दजी महात्मा गांधी और उनकी विचारधारा से अत्यन्त ही प्रभावित थे। 'रंग भूमि' में गांधीवाद साकार हो उठा है। 'कायाकल्प' में प्रेमचन्दजी आध्यात्मिक हो उठे। इस उपन्यास में उन्होंने पुनर्जन्म की भावना की पुष्टि की। उनके उपन्यासों में 'गबन' कला की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है। कथावस्तु सुसंगठित व तर्क संयुक्त है, पात्रों का चरित्र चित्रण स्वाभाविक है, तथा इस उपन्यास में उनका सुधार वादी दृष्टिकोण झलकता है। 'कर्मभूमि' में उन्होंने कर्म योग का संदेश दिया तथा सत्याग्रह-संग्राम में पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी ला खड़ा किया।

'गोदान' उनके समस्त साहित्यिक जीवन का प्रायश्चित्त व पूर्व विश्वासों की समाधि कहा जाता है। 'गोदान' में प्रेमचन्दजी की सच्ची कलात्मकता कुंदन की भांति निखर उठी है। यह एक चोटी की रचना है। उन्होंने समाज की सड़ी-गली व्यवस्था, कृषकों के जर्जर स्वरूप, भाग्यवाद के अभिशाप, आर्थिक विषमता, जमींदारों, ठेकेदारों, पूंजीपतियों की नृशंसता पर भीषण प्रहार किया है। इस उपन्यास में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता के मूल को पहचाना है। भारतीय राष्ट्रीयता के मूल में ग्राम हैं। इसीलिये 'गोदान' को ग्रामीण जीवन के अन्धकार-पक्ष का महाकाव्य कहा गया है।

प्रेमचन्दजी के आदर्शों को अपनाकर विश्वम्भरनाथ शर्मा ने 'माँ' और 'भिखारिणी' नामक दो सामाजिक उपन्यास लिखे। हिन्दी के प्रसिद्ध नाटक-कार श्री जयशंकरप्रसादजी ने भी उपन्यास-साहित्य की प्रगति में योग दिया। उन्होंने 'कंकाल' 'तितली' व 'इरावती' नामक तीन उपन्यासों की रचना की, जिनमें 'इरावती' अधूरा रहा। उन्होंने आन्तरिक विषमताओं, मिथ्या आडम्बरों, खोखली व जर्जर परम्पराओं का खण्डन किया। 'तितली' में प्रसादजी आदर्श-वादी बन गये तथा उन्होंने ग्रामीण जीवन के मनोहर चित्र अंकित किये

जैनेन्द्रकुमार ने अपने उपन्यास 'परख', 'सुनीता' व 'कल्याणी' में मानवीय भावनाओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की। उनके चिन्तन में मौलिकता है। प्रेमचन्दजी ने उनके मनोवैज्ञानिक चित्रणों पर मुग्ध होकर लिखा-"उनमें अन्तःप्रेरणा और दार्शनिक संकोच का संघर्ष है, इतना हृदय को मसोसने वाला, इतना स्वच्छन्द और निष्कपट, जैसे बन्धनों में जकड़ी हुई आत्मा की पुकार हो।" उनकी तुलना डा० रवीन्द्र और शरद से की जाती है। जैनेन्द्रकुमार ने एक दीर्घ मौन के पश्चात् 'सुखदा' और 'विवर्त' सरीखी अमर कृतियाँ हिन्दी साहित्य को प्रदान की हैं।

श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों में कथावस्तु का वैज्ञानिक संघटन और भारतीय आदर्शों का समावेश मिलता है। इनके 'विदा', 'विकास', 'विजय' इत्यादि उपन्यास प्रसिद्ध हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी सामाजिक, ऐतिहासिक एवं भावनात्मक उपन्यास लिखे, जिनमें 'सोमनाथ', 'वैशाली की नगरवधू' व 'हृदय की परख' नामक उपन्यास प्रसिद्ध हैं।

भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास लिखा। यह उपन्यास अनातोले फ्रान्स की छाया पर लिखा होने के अतिरिक्त भारतीय वातावरण से पूर्ण है। 'तीन वर्ष' नामक उपन्यास में एक चिन्तनशील दार्शनिक विचारधारा के छात्र का चित्रण है, जो कालान्तर में दानवीय गुण ग्रहण करता है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में राजनैतिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने समस्यामूलक उपन्यासों की सृष्टि की है। उनके उपन्यासों में मानसिक द्वन्द्वों का अच्छा चित्रण हुआ है। 'प्रेम पथ' 'पिपासा' 'पतवार' इत्यादि उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' का उपन्यास 'मंगल-प्रभात' एक श्रेष्ठ सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक उपन्यास है।

ऐतिहासिक उपन्यास-क्षेत्र में श्री वृन्दावनलाल वर्मा का योग सचमुच ही प्रशंसनीय है। उनके उपन्यासों में इतिहासवर्णित विवरणों और कल्पना का एक सुन्दर समन्वय है। अपनी सहृदयता व भावुकता के आधार पर ही वे मार्मिक स्थलों का चित्र खींचने में सफल हुए हैं। उनकी [illegible]

वर्माजी के उपन्यासों की वर्णनशैली रोचक, भाषा प्रवाहमयी, कथोपकथन नाटकीय एवं चरित्र-विश्लेषण मनोवैज्ञानिक है। वर्माजी के उपन्यासों के अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यासों में निरालाजी का 'प्रभावती' राहुल सांकृत्यायन का 'सिंह सेनापति' चतुरसेन शास्त्री का 'सोमनाथ' व 'वैशाली की नगरवधू' अपना प्रमुख स्थान बनाये हुए हैं।

अज्ञेयजी ने 'शेखर : एक जीवनी' में मानव के मनोविकास का एक वैज्ञानिक चित्रण किया है। इस उपन्यास में उनका दृष्टिकोण बौद्धिक भी रहा है। 'नदी के द्वीप, में उनकी प्रतिभा निखर उठी है। इलाचन्द्र जोशी भी मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास लिखने वाले हैं। 'सन्यासी' 'प्रेत और छाया' 'निर्वासित' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इसी प्रणाली पर श्री द्वारकाप्रसादजी ने 'घेरे के बाहर' नामक उपन्यास की रचना की।

उपन्यास-साहित्य में साम्यवादी व मार्क्सवादी विचारधारा का समावेश करने वाले श्री यशपाल हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने आर्थिक क्रान्ति और वर्गहीन समाज की स्थापना पर जोर दिया। 'कामरेड', 'पार्टी कामरेड' देशद्रोही' इत्यादि में भौतिकवादी सामाजिकता का अंकन किया गया है।

आधुनिक उपन्यास-साहित्य अनेक रूपों में समृद्ध है। उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त उपेन्द्रनाथ अश्क, अंचल, गुरुदत्त, विष्णु प्रभाकर तथा राजेन्द्र यादव उपन्यास के भण्डार को भर रहे हैं। आज की प्रगति को देखते हुए उपन्यास साहित्य का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

आचार्य कालक

शब्दार्थ— आरम्भ

पृष्ठ १ निर्वाण=मुक्ति। विलोड़ित=मथा हुआ, हिलाया हुआ। प्रवृत्तियां=आदतें, बहाव, प्रवाह। वर्ण-सूत्र=वर्ण व्यवस्था। आंगण=आंगन। विभूतियां=महान् पुरुष। विरूप, कुरूप-भद्दा। भ्रान्तियां=सन्देह, शक। त्रस्त=पीड़ित। महत्वाकांक्षाओं=प्रबल इच्छाओं। मूक=चुप, शान्त। झंझा=तूफान।

पृष्ठ २ स्वर्णमय=सुनहरे। स्वप्निल=सपनों का। अन्योन्याश्रित=एक दूसरे के सहारे। व्याघ्र-शा=बाघसा। मूलोच्छेद= जड़ से नाश। पददलित=कैंपला।

बड़ी दयनीय अवस्था थी। सामाजिक व धार्मिक अवस्था बिगड़ी हुई थी। भगवान् बुद्ध और महावीर स्वामी ने जो धर्म के सत् रूप का सन्देश दिया था, उसका स्वरूप बिगड़ गया था। नाना प्रकार की साम्प्रदायिक भावनाओं से समस्त भारत पीड़ित था। राजा अथवा प्रजापति निरंकुश बन गये थे तथा जनता को नाना प्रकार की यातनायें पहुंचाया करते थे। इस युग में एक प्रकार का अन्धकार-सा छाया हुआ था।

इसी समय उज्जयिनी का शासक गर्दभिल्ल दप्पण था। उज्जयिनी सिप्रा नदी के किनारे बसा हुआ था। गर्दभिल्ल दप्पण बड़ा दुराचारी व अत्याचारी शासक था। उसने गणतंत्र प्रथा का सर्वनाश कर दिया था और अपनी इच्छानुसार "तीर्थों" के बहाने वह शासन करता था। वह विलासप्रिय व कामुक था तथा अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हर शर्त पर करता था। इससे प्रजा बड़ी दुखी थी। उसके शासन को एकतंत्री कहा गया है।

पृष्ठ ३—

चारु=सुन्दर। रजत=चाँदी अर्थात् श्वेत। दिगन्त=दसों दिशाएँ। अग्रसर=आगे बढ़ना। अश्वों=घोड़ों। सारथी=रथ चलाने वाला। विशिष्ट=विशेष। आत्मविस्मृत=खोया हुआ। अनायास=अचानक। दक्ष=कुशल। पवनपथगामी=हवा के समान तेज। कबरी=सफेद रंग पर काली।

पृष्ठ ४ दण्ड-दीपिका=हाथ में लेकर चलने का छोटा डंडा, जो मसाले की सहायता से जलता है अर्थात् मशाल। पर्णकुटी=पत्तों से बनाई हुई झोंपड़ी। चत्वाल=चबूतरा। पीठिका=पीढ़ा, आसन। जटाजूट=बालों का जूड़ा। विभूति-मंडित=राख लगा हुआ। वेष्टित=लपेटा हुआ, घिरा हुआ। श्मश्रु=दाढ़ी, मूछें। आच्छादित=ढके हुए। कौपीन=सन्यासियों के पहनने की लंगोटी या चीर।

पृष्ठ ५ अभ्यर्थना=नमस्कार। सर्वज्ञाता=सब कुछ जानने वाले। अनुग्रह=दया, अनुकम्पा। याचक=मांगने वाला। कोपाग्नि=क्रोधाग्नि।

पृष्ठ ६ उद्वेलित=छलकती हुई। शमन=दबाना, दमन करना। सव्रीड़ा=लजाते हुए। भगिनी=बहन। उपाश्रय=जैन साधुओं का आश्रम। साध्वी=

स्मित-हास=मुस्कान । आवृत्त=घेरा । अन्तरीय=बनियान, भीतर का वस्त्र । स्तनांशुक=स्तनों पर धारण किया जाने वाला वस्त्र । मंदार-पुष्प-गुच्छ=एक प्रकार के फूल का गुच्छा । आसक्ति=लिप्तता ।

पृष्ठ ७ आरक्त=लाल । व्रती=नियमित, ब्रह्मचारी । पण्या=वेश्या, पुजारिन । पानक=आहार-पानी, पय पदार्थ, शर्बत, रस-आदि । काष्ठ-पात्र= लकड़ी का पात्र ।

पृष्ठ ८ सर्वद्रष्टा=सब कुछ देखने वाला । दीर्घ=लम्बी । विस्फारित= खुले हुए, फटे हुए । विभ्रम=भ्रम में । चक्षु-संस्पर्श=आँखों के स्पर्श से । अभिभूत=हारा हुआ, वश में किया हुआ । अवसान=समाप्ति ।

पृष्ठ ९ मंखलिपुत्र=गोशाला । वंचीपरम=बहुत धोखेबाज । वंचना= धोखा । निमित्त-ज्ञानी=ज्योतिषी, दैवज्ञ । उच्छिष्ट=झूठा अकारण=बेकार ।

चांदनी रात थी । राजनगर के बाहर वाले पथ पर दो रथ सरपट दौड़े जा रहे थे । अगले रथ में उज्जयिनी के शासक गर्दभिल्ल दप्पण थे और पिछले रथ में दो विशिष्ट व्यक्ति विराजमान थे । राजा गर्दभिल्ल, साध्वी सरस्वती, जो कि आचार्य कालक की बहन थी, के ध्यान में मग्न थे और दोनों विशिष्ट व्यक्ति संघ व सरस्वती महोत्सव के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे । राजा गर्दभिल्ल इस समय श्री योगीश्वर की सेवा में उपस्थित होने जा रहे थे ।

अग्रगामी रथ रुक गया । सारथी कर बद्ध एक ओर खड़ा हो गया । दूसरे रथ के आने पर दोनों सभ्य व्यक्ति रथ से उतरे, तो महाराज ने उनमें से एक को आज्ञा दी योगीश्वर तक मेरे जाने की सूचना दे आओ ।" कुछ समय पश्चात् उसी व्यक्ति के साथ हाथ में मशाल लिये हुए आश्रम का एक ब्रह्मचारी उपस्थित हुआ और राजा गर्दभिल्ल दप्पण को आश्रम में ले गया ।

योगीश्वर पत्तों से बनाई हुई झोंपड़ी के बाहर बने हुए चबूतरे पर रखी एक पीठिका पर विराजमान् थे । उनकी आकृति गम्भीर थी । विशाल नेत्र थे । दाढ़ी-मूँछें काली थी और हृदयभाग को छू रही थी । राजा को योगीश्वर ने आदर सहित बैठाया । सर्वज्ञ होने के नाते योगीश्वर राजा

बहन सरस्वती की ओर आकर्षित हो गया था और उसने योगीश्वर भगवान् को बातों ही बातों में बताया कि सरस्वती व्रती जीवन के उपयुक्त नहीं थी। उसने आगे बताया कि एक दिन जब कि मैं वन-विहार करने के लिए सिप्रा के के किनारे गया, तब मैंने आचार्य कालक की बहन सरस्वती को लोल-लहरों से क्रीड़ा करते देखा। सरस्वती ने जब एक कलहंस को कलहंसी का पीछा करते देखा, तो उसके मुख पर मुस्कान फैल गई और उसने लहरों को अपने आलिंगन में भर लिया। स्नान के पश्चात् वह लताकुंजों में घूमने लगी और मदार के पुष्प उसने अपने जूड़े में धारण किये। राजा गर्दभिल्ल दप्पण के अकस्मात् हँस पड़ने पर वह वहां से सशंक होकर चली गई। राजा ने योगीश्वर को बताया कि सरस्वती तो महाकाल के मन्दिर की पण्या बनकर रहने योग्य है।

योगीश्वर की आज्ञानुसार हिमानन्द शिष्य ने लकड़ी के पात्र में पानक लाकर दिया, जिसको राजा ने सहर्ष पी लिया।

योगीश्वर ने सर्वद्रष्टा की भाँति, जो शब्द कहे, उन्होंने महाराज को चकित कर दिया और वे अवाक् बैठे रहे। इसके पश्चात् योगीश्वर ने उपाश्रय-उत्सव की कुछ बातें ज्ञात करनी चाही। इस पर महाराज ने बताया कि सरस्वती का श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित रूप अनुपम था, उसका स्वर मधुर था और उसकी मुद्रा अनूठी थी। उन्होंने कहा वास्तव में वह जनपद-कल्याणी है।

योगीश्वर ने बताया कि आचार्य कालक जो अपने आपको दैवज्ञ (निमित्त-ज्ञानी) कहकर पुकारता है, वह एक प्रकार का धोखा है। इस ज्ञान की जो कुछ भी जूठन उसको प्राप्त हुई है, वह केवल आजीवक साधु से। आचार्य कालक की प्रत्येक सिद्धि योगीश्वर के सम्मुख बेकार थी। महाराज गर्दभिल्ल दप्पण के रवाना होते समय योगीश्वर ने उनको समझाया कि न तो तुम आचार्य कालक के समक्ष आना और न सरस्वती को उनके समक्ष आने देना, क्योंकि आचार्य कालक योगीश्वर की अनुपस्थिति में अपनी सिद्धि का उन पर प्रयोग कर सकते थे।

पृष्ठ :११ शब्दार्थ:— : दो :

गंध-कुटी=सुगंधित वातावरण से युक्त कुटिया । क्षमण=क्षमा करने वाला साधु । वर्द्धमान=बढ़ता हुआ । अविरल=लगातार । सुप्त=शान्त । आतुरता=व्याकुलता । क्षिप्र-श्वास=तेज श्वास । व्यथित=विचलित, दुखी । एकागारिकों=संकटों या आपत्तियों ।

१२ : राज दस्युओं=राजकीय-डाकुओं । अनुचर=नौकर । आर्तनाद= कराहना, दुःख सूचक शब्द ।

१३ : नाद=वाणी । श्रमण=मुनि, सन्यासी । झंझावात=आंधी प्रभा=चमक । निर्ग्रन्थ=एकाकी, दिगम्बर जैनी । अनासक्त=आसक्तिविहीन, राग-द्वेष रहित साधु । अनुकरणीय=अनुकरण करने योग्य ।

१४ : अलिन्द=चबूतरा । प्रासाद=महल । उपवन=बाग । अश्वारूढ़= घोड़े पर सवार । इन्द्रिय-निग्रह=इन्द्रियों का दमन । उपार्जन=प्राप्त करना । महती=बड़ी, महान् । कुठाराघात=चोट ।

१५ : मन : पर्याय-ज्ञान=मानसिक विचारों व वस्तुओं को परखने का ज्ञान । आधिक्य=अधिकता । कृष्णवर्ण=काली । किंकर्त्तव्यविमूढ़=हक्का-बक्का, भौंचक्का । गर्दभी-प्रदाता=गर्दभी विद्या के देने वाले । ज्ञातृपुत्र= भगवान महावीर ।

१६ : आसुरी=राक्षसी । प्रहार=चोट । हस्त-इंगित=हाथ का इशारा ।

१७ : कथित उपर्युक्त=प्रेरित किये हुए, जिनके विषय में पहले कहा गया है ।

: दो :

आचार्य कालक गंध-कुटी के द्वार पर रात्रि के समय खड़े हुए थे । वे दूर से आने वाले कोलाहल को बड़ी आतुरता से सुन रहे थे । इसी समय उनका शिष्य सागर हाँफता हुआ आया और उसने सूचना दी कि साध्वी सर-स्वती राज-दस्युओं द्वारा हर ली गई है । उसने आगे स्पष्टीकरण किया कि

अन्य वासी भी आ गये थे और वे सब घबराये हुए थे। आचार्य कालक ने सब को विमलसूरि के पास जाने का आदेश दे दिया और कुछ मन्त्रणा हेतु सागर को अपनी कुटी के भीतर बुलवा लिया।

आचार्य कालक अपनी कुटी में इधर-उधर बड़ी व्याकुलता से घूम रहे थे। उनकी स्नेहमयी बहिन व धर्म-क्षेत्र में हाथ बँटाने वाली सहयोगिनी का दस्युओं द्वारा हरण कर लिया गया था। यह बात उनके हृदय में तीर के समान चुभ रही थी। उन्हें इस समय अतीत जीवन की कुछ बीती घटनायें याद आने लगीं।

आचार्य कालक की माता का नाम सुरसुन्दरी व पिता का नाम वयरसिंह था। वे बाल्यकाल में बहिन सरस्वती के साथ धारावास नगर के राज-भवनों में विचरण किया करते थे। वे घोड़ों पर बैठ करके वन-विहार किया करते थे। तत्पश्चात् वे जैनाचार्य 'गुणाकर' के सम्पर्क में आये तथा उनके उपदेशों के प्रभाव के फलस्वरूप उन्होंने गृह का त्याग किया तथा सरस्वती ने भी जैन साध्वियों से दीक्षा ली। आचार्य कालक ने गूढ अध्ययन किया, मनन किया तथा तप-तपस्याओं से आत्मिक तत्व की प्राप्ति की। उन्होंने आजीवक आचार्य का शिष्यत्व भी स्वीकार किया तथा ज्योतिष-निमित्त-शास्त्रों का अध्ययन भी किया।

उनकी दृष्टि में साध्वी सरस्वती का हरण श्रावक-संघ की अशक्ति और अक्षमता की ओर ही संकेत नहीं था, वरन् वह आचार्य कालक पर भी एक कुठाराघात था। वे इस काण्ड में भविष्य में होने वाली क्रान्ति की छाया देख रहे थे। वे इस बात को भली भांति समझ गये थे कि इस घटना में उज्जयिनी सम्राट् गर्दभिल्ल का ही हाथ नहीं है, वरन् इस घटना के सूत्रधार आजीवकों के प्रधान योगीश्वर दहल हैं। इसलिये उन्होंने सागर को समझाते हुए बताया कि अब सतर्क होकर काम करना पड़ेगा, क्योंकि विरोधी दहन की शक्ति कम न थी।

आचार्य कालक स्वयं ही सोचने लगे कि राजा गर्दभिल्ल ने अपनी मनोकामनाओं तथा भोग-विलास की पूर्ति के लिये ही योगीश्वर की शरण ली

से प्रजा पर अवश्य पड़ता है। उनकी सावधानी केवल उज्जयिनी संघ और सत्-धर्म के लिए ही नहीं थी, बल्कि मालवा प्रदेश के लिए भी थी।

आचार्य कालक ने सागर को बताया कि राजा के कर्मों का प्रभाव प्रजा पर तथा समस्त देश पर पड़ता है। उसके सुख-दुःख को प्रजा समान रूप से अनुभव करती है। वे अपनी पीठिका पर बैठ गये थे और इस समय उनके चेहरे पर शान्ति की रेखायें झलकने लगी थीं। उन्होंने इस समय एक युक्ति सागर को बताई। आचार्य कालक ने कहा कि जब कल मैं राजभवन जाऊँ, तो उसके पूर्व भिक्षुक वहां पर उपस्थित रहें और वे कटु शब्दों से मेरा विरोध करें तथा राज-कर्मचारियों को यह दर्शाने का प्रयत्न करें कि वे सब राज-हित में हैं। उन्होंने बताया कि भिक्षुकियों को भी आदेश दे दिया जाय कि वे साध्वी सरस्वती की पूरी जानकारी रखें और प्रत्येक गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करती रहें।

इस आदेश को सुनने के पश्चात् सागर ने जाने की आज्ञा मांग ली।

शब्दार्थ :—

: तीन :

१८ : उत्तरासंग=चद्दर या खेस।

१९ : आक्रोश=गाली, अभद्र शब्द। मायावी=छलिया। अनुशीलन=चिन्तन, मनन। मोमुह=धूर्त। रभस=पाखण्डी। उपनाही=अधम, नीच। प्रव्रजन=देश निकाला।

२० : आवर्तनी-माया=चक्कर में डालने वाली माया। प्रयोजन=उद्देश्य। निमित्त-ज्ञानी=भविष्य द्रष्टा। दिशा-प्रमुख=सर्वत्र पूज्यनीय।

२१ : मतिभ्रम=जिसकी बुद्धि भ्रमित हो गई हो। विक्षिप्त=पागल।

: तीन :

काफी दिन चढ़ने तक सागर आचार्य कालक की बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा करता रहा। अन्त में आचार्य ने अपनी कुटी में प्रवेश किया। वह विगत समाचार जानने के लिये उनके पास गया और अभिवादन किया। सागर के पीठिका के करीब बैठ जाने के पश्चात् आचार्य कालक ने बताया कि परि-

राज-कर्मचारियों से बातचीत की और सरस्वती हरण के बारे में पूछताछ की, परन्तु उन्होंने पूर्ण रूप से अज्ञानता प्रगट की। जब उनकी प्रार्थना को भी राजा ने ठुकरा दिया, तब आचार्य कालक ने राजा तथा सामन्तों को कटु शब्द कहे। इस पर उत्क्षेपणों ने आचार्य कालक को 'मायावी', मोमुह, रभस, तथा उपनाही बताया और उनका कड़ा विरोध किया। फिर राजा ने आचार्य कालक को देश त्यागने का आदेश दे दिया। आचार्य कालक ने बताया कि मैं राजाज्ञा से नगरी को त्याग रहा हूँ, जिससे विपक्षियों को मुझ पर सन्देह नहीं होगा।

आचार्य कालक ने सागर को कुछ निर्देश दिये, जिनमें उन्होंने कहा कि सर्वप्रथम तो सागर को उनके कार्यों का विरोध करना पड़ेगा और ऐसे कार्य करने होंगे, जिनसे वे राजा के कृपापात्र बन सकें। दूसरे गुप्त रीति से सरस्वती की रक्षा। तीसरे आन्तरिक रूप से प्रजा का संगठन। चौथे उन्होंने बताया कि आजीवक दड्ढ़नवड्ढ़ा चतुर है, उसकी गतिविधि से सावधान रहना।

आचार्य कालक ने सागर को समझाया कि आज से तुम अपने आचार्य को मतिभ्रम व पागल के नाम से पुकारना। जिससे जन-जन यह समझ जाय कि सरस्वती-हरण और निर्वासन-राज्यादेश ने उन्हें ऐसा बना दिया होगा। इसके पश्चात् यह भी योजना बनाई गई कि आचार्य गुप्तचरों के द्वारा समय समय पर सूचनायें देते रहेंगे।

इसके पश्चात् सागर अपनी कुटी में चला गया।

शब्दार्थ :— : चार :

२२ अभयदान=रक्षा करने का वचन देना। निमित्त वेत्ता=ज्योतिषी। उपस्थानशाला=जहां किसी उद्देश्य के निमित्त उपस्थित होते हैं।

२३ [illegible]=स्थान का नाम। [illegible]=स्थान विशेष। [illegible]=स्थान का नाम; [illegible]=स्थान विशेष। पलायन=भागने की क्रिया। संयमोपघातक=[illegible] के जीवन को नष्ट करने वाला। [illegible] निरोध-गामिनी प्रतिपद्=[illegible]-

[illegible]

२४ : केवली-प्ररूपित=महावीर द्वारा चलाये हुए। वत्ति=बाती।

२५ : पर्यंक=मोढ़ा, तकिया। दुराव=छुपाव।

२६ : मरया=ताक। संधान=किसी वस्तु को सड़ाकर उसमें खमीर उठाना।

२७ : कारा-द्वार=जेल-द्वार। शील-विपन्न=जिसके सतीत्व पर संकट आया हो। विश्वस्त=विश्वास के योग्य।

३० : निरभ्र=बादलविहीन। अंतरीय=अधो वस्त्र या धोती। नीवी=कमर में लपेटी हुई धोती की वह गांठ, जिसे स्त्रियां सूत से बांधती हैं। लंबि-दुकूल=गले का कपड़ा।

३२ : स्पन्दित=कंपित। संभाषण=वार्तालाप। व्रीड़ा=लज्जा, शर्म।

३४ : दुर्दमनीय=प्रबल, जिसका दमन कठिन हो। वंचक=धोखेबाज।

३५ : वेश-विन्यास=वेश-भूषा। पारस-कूल=स्थान विशेष।

: चार :

उज्जयिनी में सरस्वती, राजा गर्दभिल्ल तथा आचार्य कालक बात-चीत के विषय बने रहे। लोग साध्वी सरस्वती के बारे में कहते कि उसने स्वयं ने योगीश्वर दहल के आश्रम में जाकर अपनी मुक्ति की प्रार्थना की और वह स्वयं महाकाल के मन्दिर में 'पण्या' बनने को इच्छुक थी। राजा गर्दभिल्ल के बारे में लोग कहते कि इस बात की सूचना मिलते ही राजा योगीश्वर दहल से मिले तथा उन्होंने सरस्वती का सम्पूर्ण भार सँभाल लिया। आचार्य कालक को अहम्भावी व क्रूर ही कहा जाता और राजाज्ञा द्वारा उसका निर्वासित होना उचित ही समझा गया।

कुछ काल पश्चात् श्रमण सागर ने घोषणा की कि आचार्य कालक स्थान स्थान पर प्रलाप करते देखे गये; वे पागलावस्था को प्राप्त हैं। उन्होंने आवेश में गर्दभिल्ल के शासन को उलटने की प्रतिज्ञा भी की है। इसी घोषणा में उसने (सागर ने) आचार्य-कालक को धर्म से च्युत बताया।

एक रात महाराज दर्पण योगीश्वर दहल के साथ मंत्रणा करने आये। योगीश्वर दहल एक सुसज्जित पलंग पर विराजमान थे और राजा गर्दभिल्ल

राजा गर्दभिल्ल साध्वी सरस्वती के प्रसंग को टालना चाहते थे, क्योंकि महाराज् का आकर्षण उसके प्रति तीव्र था, इसलिये अन्य कन्याओं की भाँति वे साध्वी सरस्वती को योगीश्वर दहल की भेंट नहीं चढ़ाना चाहते थे। इसलिये महाराज ने आचार्य कालक का प्रसंग छेड़ा। योगीश्वर दहल इस बात को समझ गये और उन्होंने सरस्वती का प्रसंग छेड़ दिया। राजा गर्दभिल्ल योगीश्वर दहल को सरस्वती के महाकाली-मन्दिर में नृत्याभिनय को देखने का निमन्त्रण देने आये थे। बातों ही बातों में राजा ने बताया कि सरस्वती अभी मार्ग पर नहीं आई है। उसको मार्ग पर लाने के लिये योगीश्वर दहल ने संधान किया हुआ पानक दिया, जो कि सरस्वती को पिलाने के लिये था। उन्होंने गुरु-भेंट का भी फिर स्मरण करा दिया।

सौम्या महाराज गर्दभिल्ल की विश्वसनीय सेविका थी। उसको महाराज ने साध्वी सरस्वती को मार्ग पर लाने के लिये नियुक्त किया था। साध्वी सरस्वती कारावास में थी और रक्षिणियों का उस पर कठोर पहरा था। सौम्या ने आकर समस्त रक्षिणियों को विदा कर दिया व स्वयं साध्वी सरस्वती के सम्मुख पहुँच गई, जो कि वहां पर बैठी हुई थी। सौम्या वास्तव में सरस्वती की हितैषी थी और वह उसको उस षड्यन्त्र से मुक्त करना चाहती थी, परन्तु बड़ी सावधानी से।

सौम्या ने सरस्वती को महाकाली के मन्दिर में नृत्य करने की बात याद दिलवाई। उसने बताया कि यदि सरस्वती मरना चाहती है, तो एक सुअवसर है। सौम्या ने रहस्य को खोलते हुए कहा कि महाराज गर्दभिल्ल योगीश्वर दहल के यहाँ से संधान की हुई सुरा लाये हैं, जिससे सेवन के पश्चात् जिस किसी प्राणी का दर्शन करोगी, उसी के प्रति तुम्हारे मन में विकार उत्पन्न होंगे। सौम्या साध्वी सरस्वती की रक्षा करना चाहती थी। उसने कहा कि यद्यपि मैं उज्जयिनी उपाश्रय की भिक्षुकी हूं, परन्तु एक साध्वी की रक्षा और मनोरंजन के लिये मैंने यह सेविका का कार्यभार संभाला है।

सौम्या ने साध्वी को एक ऐसी युक्ति बताई जिससे योगीश्वर दहल और राजा गर्दभिल्ल के मध्य ईर्ष्या का बीज अंकुरित हो सके। उसने कहा कि मैं

अंतरीय की नीवी से बंधे पात्र में वह पानक डाल दूंगी। तुम अग्रभाग को वस्त्र से ढक करके पानक पीने का बहाना करना। मैं वहाँ से उतने में चली जाऊँगी। जब महाराज तुम्हारी ओर अग्रसर हों, तो तुम "योगीश्वर दहल! योगीश्वर दहल!" कहती हुई दूर भाग जाना। इस घटना से गुरु-शिष्य के मध्य ईर्ष्या का बीज अंकुरित हो जायगा। आचार्य कालक की सफलता के लिये योगीश्वर दहल और राजा गर्दभिल्ल में विरोध होना आवश्यक था।

कुछ काल पश्चात् एक दिन सायंकाल महाराज गर्दभिल्ल लताकुञ्ज के मध्य छुप कर बैठ गये। उसी समय सौम्या और सरस्वती भी आईं। महाराज को देखकर सौम्या वहाँ से तुरन्त ही अदृश्य हो गई।

महाराज सरस्वती के समीप आये तथा उसे प्रेमपूर्ण शब्दों से पुकारा। सरस्वती भी इस समय अपने सम्भाषण में मधुर थी, जिससे राजा गर्दभिल्ल का हृदय गद्‌गद् हो गया। जब महाराज ने सरस्वती को भावावेश में अपने समीप खींचना चाहा, तब वह चीत्कार कर उठी और चिल्ला उठी, "योगीश्वर दहल!" महाराज के पूछने पर साध्वी सरस्वती ने बताया कि इस पानक के पान के पश्चात् योगीश्वर दहल आपके और मेरे मध्य खड़ा दिखाई पड़ता है। वह उस समय अधिक व्यथित थी।

महाराज सरस्वती की व्यथा से अवाक् खड़े रह गये और उनकी समझ में योगीश्वर की छलना आ गई। उन्होने समझा कि योगीश्वर दहल ने सरस्वती को ऐसा पानक दिया है, जिससे वह उनकी ओर आकर्षित हो।

योगीश्वर दहल के प्रति राजा की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उनके हृदय में प्रतिशोध की भावना जागृत हो गई और उन्होने साध्वी को दहल की माया से मुक्त कराने की प्रतिज्ञा की।

बहुत समय पश्चात् श्रमण सागर की आम्रकुटी में एक आगन्तुक प्रविष्ट हुआ। वह आचार्य कालक का गुप्तचर प्रवृद्धतीक्ष्ण था। उसने श्रमण सागर को सूचना दी कि आचार्य कालक मातृभूमि को छोड़कर पारस-कूल चले गये हैं तथा उन्होंने आदेश दिया है कि यह प्रचार किया जाय कि आचार्य कालक का देहावसान हो गया है। उन्होंने दूसरा आदेश यह दिया है कि संघ

से सब धन-संग्रह में लग जायें।

: पांच :

३७, ३८, ३९ : अष्टीला=एक ऊँचा टीला। निर्मित=बना हुआ। पताका=झंडा। हिंसक-वृत्ति=हिंसात्मक विचार। विक्षिप्त=पागल। गाम्भीर्य=गम्भीरता। हरित=हरी। उत्ताल=ऊँची। विलीन=नष्ट। व्यग्र=उत्सुक। आकृष्ट=आकर्षित। अतिक्रमण=उल्लंघन। विभीषिका=संकट, दुःख। अप्रमाद-सूत्र-शाली=जिसके द्वारा मनुष्य प्रमाद से दूर रहे। अचिन्त्य=जिस पर विचार न हो सके। निंद्य=निंदा करने योग्य।

४० : शिरस्त्राण=सर पर पहनने का टोप। आश्चर्यान्वित=चकित। अनभ्यस्त=जिसका अभ्यास न हो।

४२ : दिदिगन्त=दसों दिशायें।

४३ : सामयिक=समय के अनुकूल। पराभव=नाश, हार।

४४ : कलह=झगड़ा। प्रशस्त=विख्यात। आह्वान=पुकारना। उत्सर्ग=न्यौछावर। अभिमान=बड़ाई। अक्षय=जिसका कभी नाश न हो।

: पांच :

सारांश:—आचार्य कालक ने पारस-कूल के निकट अपनी कुटी का निर्माण किया। वहां पर उन्होंने शकों तथा शक सम्राट् को सत्-धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने शक सम्राट् की सहायता से राजा गर्दभिल्ल को परास्त करने का कार्यक्रम निश्चित किया।

आचार्य कालक कुटी के द्वार पर मौन खड़े हुये थे। उनके मस्तिष्क में उस समय नाना प्रकार की भावनायें उठ रही थीं। वे अपनी मातृभूमि और अतीत की घटनाओं के चक्र में उलझे हुए थे। उनके मस्तिष्क में कभी यह विचार भी उत्पन्न होता कि मैं इन शकों को अपनी मातृ-भूमि की ओर ले आऊँगा, परन्तु सन्देह इस बात का है कि वे मातृ-भूमि को अपना समझ सकेंगे या नहीं। परन्तु उनकी आत्म-चेतना के अनुसार जो कुछ वे कर रहे थे, वह ठीक कर रहे थे। वे इस बात की सत्यता जानते थे कि सरस्वती-गर्दभिल्ल काण्ड के विरुद्ध जो पग उठाया गया था, उसमें एक प्रकार का प्रमाद अवश्य

थे—एक शक-साहों को सत्-धर्म की ओर प्रवृत्त करना तथा दूसरा अत्याचारी गर्दभिल्ल का सर्वनाश व सरस्वती की मुक्ति । उनके समक्ष केवल सत्-धर्म के प्रचार का प्रश्न प्रबल था।

इसी बीच भिक्षु भानु ने आकर आचार्य कालक को सूचना दी कि शक-साहि स्वयं आपसे मिलने हेतु पधार रहे हैं।

शक-सम्राट् (साहि) ने आचार्य कालक को बताया कि साहाणु साहि मिथूदात्त ने एक शाही दूत के द्वारा सूचना भेजी है कि आप अपना सर कटार से काट लो, क्योंकि तुमने मेरे पिता आर्त्तवान को मारने में काफी हाथ बँटाया था तथा दूसरे तुमने एक जादूगर हिन्दू का धर्म स्वीकार कर लिया है। शक साहि ने हताश होकर कहा कि यह समाचार उन्होंने दूसरे साहियों को भी भेजा है, जिन्होंने सत्-धर्म को स्वीकार नहीं किया है।

इस पर आचार्य कालक ने पारस-कूल आने का अपना उद्देश्य बताया। उन्होंने कहा कि गर्दभिल्ल राजा विधर्मी और विलासी है। उसने सरस्वती का हरण किया है। वह राजा एक आजीवक के आदेशानुसार जैनसंघ का नाश करना चाहता है। आचार्य कालक ने शक साहि को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिये एक नव क्षेत्र बताया और वह था उज्जयिनी पर अभियान। उन्होंने कहा कि इस अभियान से वह एक महान् सम्राट् हो जायगा और उसका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा।

इस पर शक साहि बड़ा प्रसन्न हुआ। क्योंकि आचार्य ने उसके समक्ष एक ऐसा प्रस्ताव रखा था जो प्रत्येक वीर को प्रिय था। शक साहि ने यह कहकर कि वह इस मामले में दूसरे साहियों की भी राय लेगा, विदा ली।

: छः :

४५ : द्रुत=शीघ्र। छद्मवेश=बदले हुए रूप में, जासूसी वेश में। तुष्टि=संतुष्टि, तृप्ति। सैन्य=सैनिक रूप से। शक-महाशासक=शक सम्राट्। तिलांजलि=त्याग देना। प्रणय-लीला=प्रेम लीला। प्रवीण=कुशल। प्रपंचों=जाल, छल, धोखा। अर्द्ध-उच्चरित=आधा उच्चारण किया हुआ। क्लान्त=दुखता। कुंठित=

उपहास=हँसी । केवली-प्ररूपित धर्म=महावीर द्वारा चलाया हुआ धर्म । अनुतप्त=दुःखी । सामीप्य=निकटता । चपला=बिजली । राजचर=राजा का सेवक । असह्य=जो सहन न हो सके । विडम्बना=हँसी । माकूल=उचित । लश्कर=सेना । एलान=घोषणा । महा-कुपित=बड़े क्रोध से । अनुरंजित=लाल ।

: छः :

क्षमण सागर को भिक्षु भानु ने आकर गुप्त रूप से बताया कि आचार्य कालक अब उज्जयिनी पर शकराज की सहायता से अभियान करने वाले हैं । उसने आगे बताया कि सौराष्ट्र गणतन्त्रों पर विजय प्राप्त की जा चुकी है । इसके दो कारण थे—पहला यह कि सौराष्ट्र गणतन्त्र तैयार नहीं थे । दूसरा यह कि अधिकांश गणतन्त्र सत्-धर्म अनुयायी थे और उन्होंने आचार्य कालक का स्वागत किया ।

क्षमण सागर ने भिक्षु भानु को बताया कि साध्वी सरस्वती सुरक्षित है । भिक्षुकियां अन्तःपुर में छद्मवेश में उसकी रक्षा के लिए लगाई हैं । सौम्या की सेवाओं की उन्होंने प्रशंसा की ।

भिक्षु भानु ने बताया कि वर्षा ऋतु में यातायात बन्द होता है और आचार्य के आगमन की सूचना राजा के मन्त्रिमण्डल को नहीं मिल सकेगी । दूसरे इस बीच वे सेना तथा धन का संग्रह भी कर सकेंगे तथा भारतीय राजाओं की सहायता भी प्राप्त की जा सकेगी । उसने बताया कि शक सम्राट् के पास धन का अभाव है और वह लोभी भी है । इसलिये उसने बताया कि आप कितनी आर्थिक सहायता कर सकते हैं । क्षमण सागर ने पर्याप्त धन संग्रह करने का वचन दिया । भिक्षु भानु ने आगे बताया कि आचार्य कालक शकराज के प्रति दिन-प्रतिदिन विश्वास खोते जा रहे हैं क्योंकि शक जाति का स्वभाव जड़ व स्वार्थपूर्ण है । वे स्वार्थ के वशीभूत होकर सत्धर्म को तिलांजलि दे सकते है ।

भिक्षु भानु ने अर्द्ध-रात्रि को ही रवाना होने का निश्चय किया ।

साध्वी सरस्वती कुंज में विराजमान थी, इतने में वहीं पर भिक्षुकी सौम्या आकर खड़ी हो गई । सौम्या ने सरस्वती से कहा कि वह प्रणयविद्या

से सरस्वती सहम गई व कांप गई। साध्वी सरस्वती को सौम्या पर सन्देह होने लगा। सरस्वती ने इस सन्देह का कारण बताया कि उसने इस साध्वी जीवन में अति दुःख उठाया है और इस दुःख में उसको अब आत्मतृप्ति की अनुभूति होने लगी है। मुझे मेरे हृदय में व बाहर सब स्थानों पर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ता है। इसलिये यदि कभी विश्वासपात्र भी मुझे किसी सांकेतिक वाणी में कोई बात कहता है, तो उस पर भी उसको सन्देह हो जाता है। सन्देह करना यद्यपि दुर्बलता है, परन्तु स्वाभाविक भी है।

भिक्षुकी सौम्या के यह पूछने पर कि महाराज और उसके बीच क्या वार्ता हुई। साध्वी सरस्वती ने कहा कि उसकी भेद भरी बातें एक प्रकार से साध्वी का उपहास करती हैं। सौम्या ने साध्वी को समझाया कि आपका उपहास करना मेरा अभिप्राय नहीं है, बल्कि मैं सोचती हूं कि कुछ विनोद से जीवन की व्यथा को क्षण भर के लिए भुलाया जा सकता है।

साध्वी सरस्वती ने आगे बताया कि महाराज ने योगीश्वर देहल को उसके एक शिष्य के द्वारा कहला भेजा है कि उज्जयिनी के अधिपति वे स्वयं हैं, वह आजीवक नहीं तथा उसके लिए निर्वासन आज्ञा-पत्र भी भेज दिया गया है। इसी बीच सौम्या साध्वी को समाचार सुनाती है कि क्षमाक्षमण आचार्य सौराष्ट्र आ चुके हैं और वे तुमको भी मुक्त करने वाले हैं। आचार्य की इस बात पर साध्वी को अत्यन्त ही दुख हुआ, क्योंकि उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था 'शकराज और मेरी मुक्ति।' उसकी आंखों के समक्ष नर-यज्ञ की विभीषिका नृत्य करने लगी। यह सोचकर कि हिंसा का सब पाप उसे लगेगा, वह व्यथित हो उठी।

शकराज आचार्य कालक के सम्मुख बैठे हुए अपनी असमर्थता प्रगट कर रहे थे कि वर्षा के पश्चात् आक्रमण कैसे होगा। शकराज ने बताया कि धन का अभाव सब अनुभव कर रहे हैं और सेना भी इनाम चाहती है। आचार्य कालक ने आश्वासन दिया कि विपुल धन का संग्रह किया जा चुका है। इस पर शकराज का मुख खिल उठा।

इसी बीच गुप्तचर द्वारा आचार्य कालक को सूचना मिली कि योगीश्वर

क्यों कि उनके दृष्टिकोण से योगीश्वर दहल के हटने का अर्थ हुआ आधे युद्ध का जीत लेना।

शकराज के यह कहने पर कि सरस्वती छद्मसून्त है। आचार्य के हृदय में शक और शंका की तीव्र रेखायें खिंच गईं, परन्तु वे यही कहकर चुप हो गये कि वह एक साध्वी है।

: छ :

शब्दार्थ:—

नरमेध-यज्ञ=युद्ध जिसमें मानवोंकी बलि होगी। आहुति=बलि। उपकरण=साधन। सुरम्य=सुन्दर। क्षुब्ध=दुखी। विरव= बिना शब्द किये हुए। अनुकम्पा=कृपा। गगनवेधी=गगन को वेधने वाली। संकटग्रस्त=संकट में फंसे हुए। निरस्तब्धता=शान्ति नीरवता। समाहार=इकट्ठा करना, संग्रह करना। गर्दभी=एक प्रकार की दोषपूर्ण विद्या। अष्टमभक्तोपवासी=आठ भक्तों का उपवास फल पाने वाला उपासक। रुधिर=रक्त। वमन=उल्टी, कै। अट्टालक= राजगृह। निबद्ध=फँसा हुआ, बिद्ध।

: छ :

सारांश—प्रान्त प्रान्त के श्रमण-संघों ने आचार्य कालक का साथ दिया। लाट और पाञ्चाल के राजा भी गुप्त रीति से उनके साथ मिल गये। उनको अपनी नीतिकुशलता पर सन्तोष था, परन्तु अपनी मातृभूमि के लिये उन्होंने जो कदम उठाया था, उससे उनका हृदय दुखी अवश्य था।

धीरे धीरे उन्हें शकराज पर भी सन्देह होने लगा था, क्योंकि शकराज 'अर्थ' को अधिक महत्व देते थे, 'धर्म' को नहीं। वही शकराज जो कि पहले वर्षा ऋतु के पश्चात् भी आगे बढ़ने का इच्छुक नहीं था, अब धन को पाकर अर्थान्त की सीमा पर पहुँच गया था। परन्तु आचार्य कालक अपनी प्रतिज्ञा पर अटल थे, उनको कोई भी शक्ति विमुख नहीं कर सकती थी। गर्दभिल्ल को यह स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि मृत कालक इस प्रकार एक दिन अकस्मात् उज्जयिनी को घेर लेगा।

चौदह वर्ष पूर्व उन्होंने उज्जयिनी पर आक्रमण किया था, उस समय

महाराज ने अपनी बुद्धि तथा योग-सिद्धियों के उपयोग का अवसर प्राप्त किया। परन्तु माया की आसक्ति और विलासिता उन्हीं पर कुठाराघात कर बैठी। उन्होंने अपनी कामवासना के चक्कर में फंसकर योगीश्वर दहल को निर्वासित कर दिया, परन्तु जब उज्जयिनी चारों ओर से घिर गई तब उनके समक्ष योगीश्वर दहल की साकार मूर्ति खड़ी हो गई। राजा को योगीश्वर की आवश्यकता का अकस्मात् भान हो आया।

एक रात राजा को सूचना मिली कि पश्चिमी तोरणद्वार की रक्षिणी-सेना ने दरवाजे खोल दिये हैं और शत्रु भीतर घुस आया है। उनको अधिक निराशा हुई और वे क्रोध से अधिक हिंसक हो उठे। अभी राजभवन के कक्ष सुरक्षित थे।

आचार्य कालक, शकराज, लाटपति तथा पाञ्चालपति युद्ध की इस विकट स्थिति पर बात कर रहे थे। वे दुर्ग को तोड़ने की चिन्ता में थे। ऊपर गर्दभिल्ल गर्दभी विद्या का ज्ञाता था और अष्टमभक्तोपवासी के रूप में वह उसको प्रत्यक्ष कर रहा था। इस विद्या का प्रभाव सैनिकों पर तीव्र गति से पड़ रहा था। वे भयभीत होकर खून की उलटी करते और अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते।

आचार्य कालक ने इस विद्या के दुष्प्रभाव को रोकने के लिये एक युक्ति सोची। उन्होने गर्दभी-सी आकृति वाली एक वस्तु तैयार की और ऊँचे स्थान पर रखकर उसमें तीर चलाने की शिक्षा एक सौ आठ शब्दवेधी योद्धाओं को दी। जब राजा गर्दभिल्ल योगविद्या से गर्दभी को प्रत्यक्ष करने लगे उसी समय चतुर योद्धाओं ने उसका मुख बाणों से भर दिया। और इसी युक्ति से राजा गर्दभिल्ल दप्पण पराप्त हुए।

: सात :

शब्दार्थः—

६. शंकाग्रस्त=शंकाशील, संदेहयुक्त। विस्मय-विमूढ़=आश्चर्य में डूबे हुए। पुण्डरीक=सफेद कमल।

अस्थिपिंजर=हड्डियों का ढाँचा। असंदिग्ध=स्पष्ट,। पराभव=नाश, हार।

: सात :

सारांश:—शकराज और आचार्य कालक विजयी हुए। उज्जयिनी में विजयोत्सव मनाया गया। शकराज के राज्याभिषेक में समस्त राजा व श्रमण उपस्थित थे। आचार्य कालक ने राजा के मस्तक पर तिलक किया।

इसके पश्चात् आचार्य कालक ने शकसम्राट् से सरस्वती के मुक्त न करने के बारे में पूछा। उन्हें शकसम्राट् से वही उत्तर मिला, जिसकी उनको आशा थी। उसने साध्वी सरस्वती को अपनी मलका (राजरानी) के रूप में देखना चाहा। आचार्य कालक का समस्त विश्वास शकराज से उठ गया।

उन्होंने सौम्या भिक्षुणी को पुकारा। सभा-मण्डप शान्त था। सम्राट भी मूक था। सब ने देखा कि एक श्वेत वस्त्रधारिणी स्त्री का अस्थिपंजर मूर्ति के रूप में सबसे समक्ष आकर खड़ा हो गया। यह मूर्ति साध्वी सरस्वती की थी, जिसकी प्रायश्चित्त के तप से ऐसी स्थिति हो गई थी। इस अवसर पर आचार्य कालक ने कुछ नहीं कहा, परन्तु उन्होंने बता दिया कि शक सम्राट् का पतन अवश्यम्भावी है।

"अरिहंते सरणं पवज्जामि" का उच्चारण करती हुई वह मूर्ति आचार्य कालक के पीछे पीछे चली गई।

सब शान्त और निस्तब्ध थे।

उपन्यास:—

उपन्यास साहित्य की एक प्रमुख प्रणाली अथवा अंग है। वैसे साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है और साहित्य का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु मानव जीवन व उसकी नाना अनुभूतियों की जितनी व्यापक व्याख्या उपन्यास में होती है, उतनी अन्य किसी में नहीं। मुन्शी प्रेमचन्द जी ने उपन्यास को"मानव जीवन का चित्रमात्र कहा है। मानव जीवन बड़ा व्यापक और विस्तृत है। उसमें सुख, दुःख, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ-क्रोध, करुणा, सब वृत्तियों का समावेश है। ये वृत्तियां जीवन संघर्ष का कारण होती हैं। मानव उन संघर्षों को हटाता हुआ व आने वाली रुकावटों को दूर करता हुआ प्रगति-पथ पर आगे बढ़ता है। उपन्यासकार इन संघर्षणों को उपन्यास में दर्शा

कार अपनी रचना में इतने विस्तृत व विशाल मानव जीवन की घटनाओं को नहीं दर्शा सकता। वह जीवन की कुछ आवश्यक व महत्वपूर्ण घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन करके सम्पूर्ण मानव जीवन की व्याख्या करने का सतत प्रयत्न करता है। इसीलिये उपन्यास को विशाल मानव जीवन का संक्षिप्त इतिहास कहा गया है।

उपन्यास के तत्व—

१. कथानक
२. कथोपकथन
३. पात्र-चरित्र-चित्रण
४. देश-काल
५. उद्देश्य
६. शैली

उपन्यास के तत्व

१. कथानकः उपन्यास में एक क्रमबद्ध तथा नियमित रूप से कहानी है और इसीलिये उपन्यास को हम विशाल मानव जीवन का संक्षिप्त इतिहास कहते हैं। जीवन में अनेक प्रकार की घटनाएँ क्रिया-व्यापार और क्रिया-कलाप हैं, इस सब का सिलसिलेवार उपन्यास में वर्णन होता है। उपन्यास के कथानक में इसीलिये क्रमबद्धता और गठन होता है। जीवन की बिखरी तथा उलटी-सुलटी घटनाओं को उपन्यासकार एक सूत्र में बांध देता है और इस प्रकार समस्त उपन्यास क्रमबद्ध घटनाओं की एक शृंखला सी हो जाता है। उपन्यास के कथानक में शिथिलता नहीं होनी चाहिए, यह उपन्यास के लिए प्राणघातक है। उपन्यासकार का अनुभूतिशील होना आवश्यक है तथा जिस क्षेत्र का वह वर्णन करने जा रहा है उसका परिज्ञान भी होना आवश्यक है। इस ज्ञान के अभाव में वह अनुचित और असंगत वर्णन कर सकता है। इसके अतिरिक्त स्वाभाविकता व वास्तविकता उपन्यास में प्राण फूँक देती है।

'आचार्य चाणक्य' उपन्यास का कथानक ऐतिहासिक है। आचार्य चाणक्य

सरस्वती, सौम्या इत्यादि की कुछ जीवन-घटनाओं का सिलसिलेवार इस उपन्यास में वर्णन है। राजा दर्पण का योगीश्वर दहन से मिलना, सरस्वती-हरण, आचार्य कालक का निर्वासन, राजा गर्दभिल्ल व योगीश्वर दहल में ईर्ष्या का अंकुरित होना, कालक का शक सम्राट् से सम्पर्क तथा उसकी सहायता से अभियान, दर्पण का पतन तथा शक सम्राट् का राज्याभिषेक इत्यादि सब घटनाओं का क्रमबद्ध तथा सिलसिलेवार वर्णन है। इसीलिये उपन्यास में कहीं भी शिथिलता व निष्क्रियता नहीं आ पाई है। कथानक में एक प्रकार का गठन है और शृंखला की कड़ियों की भांति घटनायें एक दूसरे से मिली हुई हैं। कथानक को रोचक तथा आकर्षक बनाने के लिये कहीं कहीं हमें सौम्या की हास्य-स्पद विनोद भी सुनने को मिलते हैं जिससे औपन्यासिक घटनाओं की गम्भीर बौद्धिक गम्भीरता कम हो जाती है और पाठक का हृदय क्षणमात्र के लिए प्रफुल्लित हो उठता है।

इसके अतिरिक्त उपन्यास की घटनायें मशीन के पुर्जों की भांति स्वयं ही अग्रसर होती रहती हैं और पाठक का हृदय इसी उत्सुकता में लीन होता है कि किस प्रकार अन्त में साध्वी सरस्वती को मुक्ति मिलती है।

इस उपन्यास का कथानक स्वभाविकता व वास्तविकता से भी पूर्ण है।

२. चरित्र-चित्रण:

यहां चरित्र-चित्रण का सीधा तात्पर्य उपन्यास के पात्रों तथा उनके चरित्र से है। उपन्यास का प्रमुख तत्व चरित्र-चित्रण है कथा-वस्तु के विकास में पात्रों का चरित्र-चित्रण ही महत्वपूर्ण है: उपन्यास के भवन निर्माण में यदि घटनाएँ ईंटों का काम करती हैं तो पात्र तथा चरित्र उन ईंटो पर सीमेंट का कार्य करते हैं। पात्रों व घटनाओं में घनिष्ठ सम्बन्ध है। घटनायें पात्रों के चरित्र पर विशेष प्रकाश डालती हैं। कभी कभी उपन्यासकार अपनी स्वयं की तूलिका से भी किसी पात्र के चरित्र में अच्छाई व बुराई का रंग भरता है और कभी कभी पात्रों के वार्तालाप पात्रों के चरित्र पर विशेष प्रकाश डालते हैं। अपने पात्रों द्वारा ही उपन्यासकार अपने आदर्शों व सिद्धान्तों का प्रतिपादन

उपन्यासकार अपने पात्रों को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उनके सच्चे स्वरूप को निखारने का प्रयत्न करता है. पात्रों के जीवन का सही अवलोकन और उसकी उचित व्याख्या ही वास्तव में उपन्यास को सजीव बना देता है। उपन्यास मानव जीवन की व्याख्या है। इसलिये पात्र, नाम व रूप कल्पित होते हुए भी उनमें वास्तविकता का पुट होता है। मानव जीवन के दो पहलू हैं—पहला सत् जिसमें प्रेम, दया, क्षमा, शील इत्यादि भावनायें आती हैं और दूसरा पहलू असत् का, जिसमें ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष इत्यादि की भावनायें आती हैं और इन भावनाओं के अपनाने से ही पात्र सत् और असत् होता है। उपन्यासकार दोनों प्रकार के पात्रों को अपने उपन्यास में दर्शाकर उनमें संघर्ष करवाता है। घटनाओं के चित्रण से ही यदि उपन्यास के कथानक को अग्रसर किया जाता है या पात्र के चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है तो वह स्थायी प्रभाव अंकित नहीं करता। परन्तु जिन उपन्यासों में पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण होता है वह स्थायी प्रभाव अंकित करता है। यही कारण है कि चरित्रप्रधान उपन्यासों का महत्व है, घटनाप्रधान उपन्यासों का नहीं।

चरित्र-चित्रण के प्रकारः—चरित्र-चित्रण के कई प्रकार होते हैं। कुछ उपन्यासकार स्वयं पात्रों की विशेषताओं का वर्णन करते चलते हैं। वे स्वयं अपने पात्रों की सबलताओं व दुर्बलताओं पर प्रकाश डालते हैं। इसको विश्लेषणात्मक प्रणाली कहा जाता है। इस प्रणाली की महत्ता इसलिए नहीं है कि उपन्यासकार स्वयं पात्रों के व्यक्तित्व को दबा लेता है।

कुछ उपन्यासकार पात्रों के चरित्र का विश्लेषण न करके केवल कुछ संकेत देते चलते हैं, जिससे पाठकों की उत्सुकता जागृत रहती है। पात्रों की मानसिक स्थिति का परिचय बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से मिलता है। आजकल उपन्यासों में इस कला का अधिक प्रचलन है।

अधिकतर अपनाई जाने वाली प्रणाली यह है कि स्वयं उपन्यासकार तटस्थ रहकर पात्रों के पारस्परिक संभाषणों द्वारा उनके हृदय की विशेषताओं का उल्लेख करवाता है। इस चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता बनी रहती है। पात्रों के क्रिया-कलाप द्वारा भी पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है।

इस उपन्यास में आचार्य कालक का चरित्र प्रधान है। आचार्य कालक, साध्वी सरस्वती व अनेक अन्य साथी सत् वृत्ति के पात्र हैं, जब कि योगीश्वर दहल और विशेष रूप से राजा गर्दभिल्ल दप्पण असत् वृत्तियों से ग्रस्त हैं। उपन्यासकार ने पात्रों को विभिन्न परिस्थितियों रखकर उनके चरित्र को स्वर्णिम करने का प्रयत्न किया है और वे उसमें सफल भी हुए हैं। आचार्य कालक की धर्मपरायणता व धर्मप्रचार की चेष्टा उस समय भी क्षीण व मन्द नहीं होती, जबकि सरस्वती के हरण से उनकी सीधी भुजा कमजोर हो जाती है, उनके निर्वासन से उनके उद्देश्य में बाधा उत्पन्न होती है। साध्वी सरस्वती तो दु:ख सहने की आदी हो गई है और अपने सत्-धर्म पर दृढ़ है। लेखक ने अपने पात्रों के चरित्र को व्यक्त करने वाली समस्त प्रणालियों को अपनाया है। उन्होंने पात्रों के चरित्र के बारे में स्वयं के विचार भी व्यक्त किये हैं। परस्पर संभाषणों द्वारा भी चरित्र का उद्घाटन किया है तथा कहीं कहीं मनोवैज्ञानिक ढंग से भी अपने पात्रों के चरित्र को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। सक सम्राट् के क्रियाकलापों से उसका चरित्र सामने आ जाता है।

आचार्य कालकः—

आचार्य कालक उपन्यास के नायक हैं। उपन्यास की सभी घटनायें आचार्य कालक से सम्बन्धित हैं। वे उपन्यास के केन्द्रबिन्दु है, जिसके चारों ओर घटनाओं का चक्र घूमता है।

आचार्य कालक मगध राजा वयरसिंह के पुत्र थे। माता का नाम सुर-सुन्दरी था। जैनाचार्य गुणाकर के धर्मोपदेशों से प्रभावित हुए तथा गृहत्याग किया। इन्द्रियनिग्रह, गूढ़ मनन तथा एकाग्र तप के आधार पर आत्मिक तत्व का उपार्जन किया। आचार्य के हृदय में सत् धर्म प्रचार की महत्वाकांक्षा निहित थी। वे निमित्तशास्त्र के भी ज्ञाता थे। उनके जीवन के केवल दो ही उद्देश्य थे श्रमण-संघ का संगठन व सत्-धर्म का प्रचार। जीवन-पर्यन्त वे इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में संलग्न रहे।

आचार्य कालक प्रखरबुद्धि हैं। वे वर्तमान परिस्थिति का केवल अवलोकनमात्र करने की ही क्षमता नहीं रखते थे, बल्कि भविष्य में भी उनके

और राजा गर्दभिल्ल के पतन की भविष्यवाणी की तथा शक सम्राट् के हृदय को मलिन तथा दूषित होता देख उन्होंने उसके पराभव का भी तुरन्त बोध करा दिया।

जिस युक्ति से उन्होंने अपना स्वयं का निर्वासन करवाया, जासूसों का जाल बिछाया तथा शक सम्राट् को अपनी नीति तथा धार्मिक कुशलता से अपना सहायक बनाया इत्यादि सब उदाहरण उनकी प्रखर बुद्धिमत्ता के हैं।

कालक गम्भीर, धीर तथा शान्त प्रवृत्ति के थे। विपत्ति में भी उन्होंने धैर्य का साथ नहीं छोड़ा। सरस्वती-हरण का समाचार सुनकर भी वे शान्त, गम्भीर तथा धीर बने रहे। दुःख, और विषाद तथा क्रोध के तूफान को पानी की घूँट की भांति पी गये। प्रतिशोध की प्रज्वलित भावनाओं को उन्होंने नहीं दर्शाया परन्तु समय पर अपने उद्देश्य को हर शर्त पर पूर्ण करके ही रहे। मातृभूमि को जान-बूझ कर उन्होंने पददलित करवाया और एक विदेशी को उन्होंने शासक बनाया। यद्यपि इससे उनका हृदय संतुष्ट नहीं था, परन्तु करते तो क्या करते? वे अपने कर्ममार्ग पर अग्रसर थे और हर शर्त पर अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते थे। यही उनका दृढ़ संकल्प था और यही उनके वचन का पालन था।

उनमें परिस्थिति को ही नहीं, बल्कि मनुष्यों के चरित्र तथा उनके क्रिया कलाप को समझने की अद्भुत क्षमता थी। सरस्वती हरण के समय उन्होंने शीघ्रता से काम नहीं लिया, समय की प्रतीक्षा की। शक सम्राट् के क्रिया कलापों से वे उसके चरित्र को पहचान गये थे। उन्होंने जान लिया था कि शक सम्राट् लोभी है और अर्थ के समक्ष धर्म को त्यागना उसके लिये साधारण सी बात है। वे इस बात को भी भांप गये थे कि शक सम्राट् का हृदय साध्वी सरस्वती की ओर से मलिन हो गया था।

उनकी चतुराई तथा कुशलता ने सत्-धर्म की रक्षा की और सरस्वती दर्पण के चंगुल से मुक्त किया। योगीश्वर दहल के शब्दों में यद्यपि वे 'वंची-परग' और अपने आपको निमित्तज्ञानी कहकर वंचना करने वाले थे, परन्तु यह योगीश्वर दहल की धारणा पूर्ण सत्य नहीं थी।

स्वभाव से आचार्य सत्-धर्मी और दार्शनिक हैं। परन्तु परिस्थितियों

उनको कुछ प्रपंच और विदेशी सहायता प्राप्त करने के लिये बाध्य करती है। उन्होंने शक सम्राटों में भी सद्-धर्म का प्रचार किया और उनको सद्-मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया।

आचार्य कालक ने राजा गर्दभिल्ल दर्पण की गर्दभी विद्या का प्रतिकार किया और इसमें उन्होंने अपने बुद्धि-कौशल और ज्ञान-चतुराई का अद्भुत परिचय दिया। शकराज की अन्तिम क्रिया से उनका विश्वास शकराज पर से उठ गया। उन्होंने मन्त्र विद्या से सरस्वती की मूर्ति रूप में सभा-मण्डप के समक्ष उपस्थित कर दिया। उनकी इस मन्त्र-विद्या से सब अवाक् रह गये।

संक्षेप में आचार्य कालक आचार्य, निमित्त शास्त्री, दार्शनिक व सद्-धर्मी थे। वे धीर, गम्भीर तथा शील वृत्तियों से युक्त थे। उनकी बुद्धि प्रखर थी व कार्यकुशलता सराहनीय थी। वे दृढसंकल्प व कर्तव्यपरायण थे। वे राजा गर्दभिल्ल के विरोधी नहीं, बल्कि उसके कुकर्मों तथा पाखंडों के विरोधी थे। उनके जीवन का उद्देश्य सद् धर्म का प्रचार और श्रमण-संघों का संगठन था।

साध्वी सरस्वती :—

साध्वी सरस्वती का परिचय हमें प्रथम अनुच्छेद में ही मिल जाता है। वह आचार्य कालक की बहिन थी और धर्मप्रचार में उनका दांया बाजू थी। वह सतीजीवनधारिणी थी। सौम्यता, अबोधता व सादगी उसके जीवन की विशेष विशेषतायें थीं। राजा गर्दभिल्ल का अनुमान इस साध्वी के प्रति उचित नहीं था। वह महाकाल के मन्दिर की पण्या बनने योग्य नहीं, बल्कि सद् धर्म के विशाल मन्दिर की सुन्दर मूर्ति बनने योग्य थी। इसी अनुचित अनुमान के आधार पर राजा दर्पण ने योगीश्वर दहुल की सहायता से उसका हरण किया।

सौम्या उसकी सेविका है। उसका भोला व अबोध हृदय सौम्या के व्यंग्यों तथा उसके हास्यास्पद वाक्यों को नहीं समझता था। सौम्या ने जो उसको युक्ति बताई थी (योगीश्वर दहुल और राजा दर्पण में ईर्ष्या उत्पन्न करने की) उसको वह बड़ी कठिनाई से समझ पाई।

तृप्ति की अनुभूति होती थी। उसने सौम्या से कहा था कि उसका नारीत्व मरुभूमि में पुष्पलता की भांति मुरझाने को ही हुआ था।

उसने जब सुना कि आचार्य शक सम्राट् के साथ उसको मुक्त करने के लिए आ रहे हैं तो उसका हृदय वेदना से पसीज उठा। हिंसा का सारा पाप उसके अहिंसात्मक व्रत का नाश कर रहा था। वह अपने लिए इतने बड़े नर-यज्ञ को करवाने के लिए तैयार नहीं थी और इसी नर-यज्ञ के प्रायश्चित्तस्वरूप उसका शरीर केवल अस्थिपंजरमात्र रह गया था।

सौम्यता, अबोधता, सहनशीलता, तप, दुःख से आत्मतृप्ति, अहिंसात्मक व्रत और अपने लिए नरमेध-यज्ञ का प्रायश्चित्त ही उसके जीवन की प्रधान विशेषतायें थीं।

राजा गर्दभिल्ल दप्पण :—

अपार शक्ति से राजा गर्दभिल्ल दप्पण ने योगीश्वर दहल की अनुकम्पा से उज्जयिनी पर आक्रमण किया था। उनकी राजनीति-पटुता, बुद्धि-वैभव, दूरदर्शिता और योग-सिद्धियों को उनकी आसक्ति और वासना ने नष्ट कर दिया। राजा ने चिरपरिचित गणतन्त्र प्रथा का मूलोच्छेद किया तथा समस्त शासनभार मनोनुकूल तीर्थों के हाथ में दे दिया। यह नवीन तन्त्र राजा की आकांक्षाओं और वासनाओं की तृप्ति के लिए था। राजा गर्दभिल्ल का शासन एकतन्त्री और एकरंगी था। प्रजा सुखी व सन्तुष्ट नहीं थी।

राजा गर्दभिल्ल साध्वी सरस्वती पर आसक्त हुआ और योगीश्वर दहल की सहायता से उसका हरण किया। गर्दभिल्ल दप्पण योगीश्वर दहल के आदेशों पर ही कार्य करते थे। वे उसी के हाथ की कठपुतली थे और योगीश्वर दहल ने उनकी समय समय पर सहायता भी की।

विलासिता तथा भोग में लीन राजा दप्पण की मानसिक शक्ति का ह्रास हो गया था। उनमें परिस्थिति को समझने की क्षमता नहीं थी। सौम्या की एक साधारण चाल ने उनके हृदय में योगीश्वर दहल के प्रति ईर्ष्या के बीज अंकुरित कर दिये और अन्त में उन्होंने योगीश्वर दहल को भी निर्वासन का आदेश दे दिया। यह कार्य उनकी बुद्धिमत्ता का परिचायक नहीं था, क्योंकि दहल के जाने के पश्चात् उसकी शक्ति आधी रह गई।

आचार्य कालक की युक्तियों को भी वह नहीं समझ सका और अपने विलास की क्रियाओं में लीन रहा। उसकी आँखें उस समय खुलीं जबकि उज्जयिनी चारों ओर से घिर गया। उसने क्रोध तथा आवेश में गर्दभी विद्या का प्रयोग किया, परन्तु आचार्य ने उसका शीघ्र ही प्रतिकार कर दिया।

राजा गर्दभिल्ल का भी अन्त उसी प्रकार हुआ, जैसा कि अत्याचारी व विलासी राजाओं का होता है।

योगीश्वर दहल :—

योगीश्वर दहल राजा गर्दभिल्ल के राजगुरु थे। वे राजा गर्दभिल्ल की विलासिता के एक प्रकार के साधन थे। वे मन्त्र व योगविद्या में प्रवीण थे। उनका सरस्वती-हरण में प्रमुख हाथ था। राजा गर्दभिल्ल के साथ साथ वे भी विलासिता में लीन थे, परन्तु वे टाटी की ओट में शिकार खेलते थे।

राजा गर्दभिल्ल ने ईर्ष्या से वशीभूत होकर योगीश्वर दहल को भी निर्वासित कर दिया था।

शकराज :—

शकराज ने सत्-धर्म को अंगीकार किया, परन्तु वह अर्थ और धर्म में अर्थ को अधिक महत्व देता था। आचार्य कालक की सहायता उसने स्वार्थ के वशीभूत होकर के की। धन को पाकर ही शकराज ने अभियान किया। शकराज में भी शासकों की सी मादकता थी। सरस्वती ने रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनकर वह भी उस पर आसक्त हो गया और उसका हृदय मलिन हो गया। उसने सरस्वती को मलका बनाने का निश्चय किया, परन्तु आचार्य कालक ने उसका केवल कंकालमात्र दिखाकर अवाक् व मूक कर दिया।

कथोपकथन :—

कथोपकथन से उपन्यास की कथा को गति मिलती है और तथा पात्रों के चरित्र व क्रियाकलाप पर भी संभाषण का प्रभाव पड़ता है। किसी भी आदमी के मनोभावों को व उसकी मनोवृत्ति को बातचीत ही बता सकती है। कथोपकथन में उपन्यासकार को बड़ी जागरूकता और सावधानी बरतनी पड़ती है। कथोपकथन उपन्यास की घटनाओं को भी अग्रसर करते हैं। उप-

किसी भी उपन्यास के कथोपकथन संक्षिप्त और स्पष्ट होने चाहिए। लम्बे संभाषण पाठक को उकताने वाले होते हैं तथा अस्पष्ट संभाषण आकर्षण उत्पन्न नहीं करते। कथोपकथन इतने संक्षिप्त भी नहीं होने चाहिए कि पात्र मतलब भर की बात कह ही नहीं सके और न स्पष्टता के चक्कर में सभाषण की संक्षिप्तता को खो बैठना चाहिए। उपन्यास के कथोपकथन में स्वाभाविकता का होना आवश्यक है। उनमें किसी प्रकार का बनावटीपन व आडम्बर नहीं होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि ग्राम का उज्जड़ किसान नगर के सभ्य मनुष्य की भाषा बोलने लगे।

इस उपन्यास में कथोपकथन सुन्दर बन पड़े हैं। वे संक्षिप्त और स्पष्ट हैं। कहीं कहीं केवल लम्बे कथोपकथन बन पड़े हैं। उदाहरणस्वरूप पृष्ठ ६, १६, १८, इत्यादि पर। इन कथोपकथनों में एक प्रकार की स्वाभाविकता भी है। आचार्य और योगीश्वर पांडित्यपूर्ण भाषा का प्रयोग करते हैं तो शकराज के मुख से संस्कृत-गर्भित शब्दों का उच्चारण नहीं होता।

देश-काल :—

साहित्य समाज का दर्पण है। प्रत्येक काल की स्थिति का ज्ञान हमें उस काल के साहित्य से हो सकता है। उपन्यास साहित्य की सर्वश्रेष्ठ प्रणाली है जो कि काल और देश के बन्धनों से मुक्त नहीं है। देश-काल की परिभाषा में किसी विशेष स्थान के विशेष काल के आचार-विचार, रीति-रिवाज, वेशभूषा, रहन-सहन सभी कुछ आ जाते हैं। जिस काल विशेष की कहानी लिखने उपन्यासकार जाता है, उस काल विशेष की प्रत्येक परम्परा व रीति का वह पूर्ण ध्यान रखता है। वह काल और देश को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक स्थिति का मार्मिक चित्रण करता है। काल और देश के वर्णन के बिना उपन्यास अधूरा है।

इस उपन्यास में निश्चित स्थान उज्जयिनी है, जहां कि महावीर स्वामी के ४०० वर्ष पश्चात् गर्दभिल्ल दप्पण राजा ने राज किया। उसने परम्परागत गणतन्त्रों को तोड़कर मनोनुकूल तीर्थों के द्वारा शासन पद्धति प्रचलित की। इसके अतिरिक्त पारस-कूल नामक स्थान का भी वर्णन है और शकराज के ---- का) जिससे आचार्य ने सहायता प्राप्त की थी। लेखक ने उस काल की

आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति से पाठक को परिचय देने की पूर्ण कोशिश की है। जहां-तहां हमें उपवनों, मार्गों, उपाश्रयों का भी वर्णन मिलता है।

भाषा-शैली :—

भाषा भावाभिव्यक्ति का एक साधन है। मानव के भावों की अभिव्यक्ति भाषा ही है। हम कला-कृतियों और साहित्यकारों को उनकी भाषा के द्वारा ही समझ पाते हैं। भाषा को साहित्य का कलेवर कहा जाता है।

शैली भाषा का अभिन्न अंग है। शैली अपनी गति के द्वारा भाषा को सौन्दर्य प्रदान करती है। भाषा के प्रवाह व गति को ही हम शैली कहते हैं। भाषा किसी भी साहित्यकार के हृदय पर अंकित होने वाले भावों व मनोभावों का ही चित्रण करती है, जब कि शैली उनकी गहराई तक पाठक को पहुंचाती है। शैली भाषा के किसी विशेष भाव को तीव्रता प्रदान करती है तथा भावों को भाषा में उचित रूप से व्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न करती है।

प्रत्येक साहित्यकार की अपनी अपनी शैली है। कोई अपने विचारों को छोटे छोटे वाक्यों से तो कोई लम्बे लम्बे वाक्यों से। कोई तीव्र गति से चलता है। तो कोई मन्द गति से। किसी की भाषा पांडित्यपूर्ण होती है तो किसी की सरल। इस उपन्यास की भाषा कुछ कठिन है, परन्तु उस कठिनता ने विचारों के प्रवाह को नहीं तोड़ा है। वीर रस ओत-प्रोत भावों को ही व्यक्त करेगा तथा शृंगार रस की अभिव्यक्ति कोमल तथा मधुर शब्दों से ही होगी।

उपन्यास 'आचार्य कालक' में भाषा कुछ संस्कृतगर्भित है तथा दैनिक जीवन में काम न आने वाले शब्दों का प्रयोग हो गया है। भाषा में प्रवाह अवश्य है। भाषा पात्रानुकूल है। कहीं कहीं भावनात्मक तथा काव्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। भावों तथा विचारों की तीव्रता के साथ साथ भाषा भी कहीं-कहीं क्लिष्ट हो गई है।

उद्देश्य :—

प्रत्येक वस्तु के लिखने का कुछ न कुछ उद्देश्य होता ही है। अतएव उपन्यास का भी कुछ न कुछ उद्देश्य होना स्वाभाविक ही है। उपन्यास मानव

सृष्टि के आधार हैं। उपन्यासकार नैतिक भावना से प्रेरित होकर जीवन का मनन व अध्ययन करता है। किसी विशेष सिद्धान्तों के खण्डन व मण्डन के लिए उपन्यास नहीं लिखे जाते हैं। उपन्यास मानव जीवन का निरीक्षणमात्र के उद्देश्य से लिखे जाने चाहिए।

'आचार्य कालक' उपन्यास का मूल उद्देश्य आचार्य कालक के जीवन की व्याख्या के बहाने सत्-धर्म की विजय दिखाना है। विजय अन्त में मानव की सत्-वृत्तियों की ही होती है और असत्-वृत्तियों को मुँह की खानी पड़ती है। आचार्य कालक ने दुःख व पीड़ा सहकर भी सत्-धर्म की रक्षा हेतु साध्वी सरस्वती को मुक्त किया। उनके इस प्रयत्न के अभाव में अधर्म की कुत्सित प्रवृत्तियों के फैलाने का भय था। लेखक ने अत्याचारी राजाओं की विलासिता व धन लोलुपता के दर्शन भी कराये तो योगीश्वर समान पाखण्डी आजीवक साधुओं की भी पोल खोल दी। साध्वी सरस्वती के जीवन से सत्य और अहिंसा का पाठ मिलता है तथा आचार्य कालक की कर्म-निपुणता एक सच्चे सत्-धर्मी का ध्यान दिलाती है। संक्षेप में उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य सत्-धर्म की असत्-धर्म पर विजय दिखाना है।

---

२. मजदूरिन

अध्याय १

प्रश्न—साहित्य की परिभाषा बतलाते हुए उसके विविध अंगों पर विवेचनात्मक रूप से अपने विचार व्यक्त करो।

उत्तर—मानव के अन्तस्तल के भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति को साहित्य कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार साहित्य को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है :—

(१) भावात्मक साहित्य (Literature of Power)

(२) प्रज्ञात्मक साहित्य (Literature of Knowledge)

(१) भावात्मक साहित्य :—

सभी प्रकार के रचनात्मक साहित्य को भावात्मक साहित्य कहते हैं। इसके अंतर्गत महाकाव्य, खण्ड काव्य, मुक्तक काव्य, गीति काव्य, गद्य काव्य, नाटक, एकांकी, रेडियो नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और आलोचनात्मक साहित्य इत्यादि आते हैं।

(२) प्रज्ञात्मक साहित्य :—

वह साहित्य जिसका सम्बन्ध मनुष्य की प्रज्ञा एवं बुद्धि से है, उसे प्रज्ञात्मक साहित्य कहते हैं। जैसे इतिहास, भूगोल, विज्ञान, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित इत्यादि।

प्रश्न २—भावात्मक साहित्य के विविध अंगों का सविस्तार विवेचन करिए।

उत्तर—भावात्मक साहित्य के निम्नलिखित अंग हैं :—

(१) महाकाव्य (२) खण्ड काव्य (३) मुक्तक काव्य (४) गीति काव्य (५) गद्य काव्य (६) नाटक (७) एकांकी (८) रेडियो नाटक (९) उपन्यास (१०) कहानी (११) निबन्ध (१२) समालोचनात्मक साहित्य।

(१) महाकाव्य—

जिस पद्यमय रचना में मानव के आद्योपान्त जीवन की (जन्म से लगा कर मृत्यु पर्यन्त) समस्त घटनाओं का कलात्मक वर्णन हो, उसे महाकाव्य कहते हैं। जैसे—महाकवि जायसी द्वारा लिखित 'पद्मावत', मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित 'साकेत,' तुलसी द्वारा लिखित 'रामचरित मानस' इत्यादि महाकाव्य हैं।

(२) खण्ड काव्य :—

वह पद्यमय रचना, जिसमें किसी महामानव के जीवन की एक प्रमुख घटना पर काव्य की रचना कवि करता है, उसे खण्ड काव्य कहते हैं।

जैसे—मैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथ-वध' और 'यशोधरा' जयशंकर-प्रसाद का पंचवटी इत्यादि खण्ड काव्य हैं।

(३) मुक्तक काव्य :—

वह-पद्यमय रचना, जिसमें घटनाओं का सम्बन्ध (Link) परस्पर में एक दूसरे से नहीं जुड़ता है, उसे मुक्तक काव्य कहते हैं। जैसे–कबीर–'बीजक' और तुलसी द्वारा रचित 'कवितावलि,' 'गीतावलि,' बिहारी सतसई और रहीम के दोहे इत्यादि की गणना मुक्तक काव्यों में की जा सकती है।

(४) गीति काव्य :—

वह पद्यमय रचना जो संगीतमय हो और गायकों के गाने योग्य हो, उसे गति काव्य कहते हैं। जैसे–मीरां के पद और सूर के पदों को गणना गीति काव्य के अंतर्गत की जा सकती है। महादेवी के पद भी गीति काव्य के अंतर्गत ही हैं।

(५) गद्य काव्य :—

वह रचना जो पिङ्गल के नियमों में आबद्ध न हो और जिसमें गेय तान हो, उसे गद्य काव्य कहते हैं। जैसे–गीता, रामायण इत्यादि की अनूदित भाषा-टीकाबद्ध रचनाओं को गद्य काव्य कहा जा सकता है।

(६) नाटक :—

वह साहित्यिक गद्य एवं पद्यमय रचना जो रंगमंच पर अभिनय किये जा सकते हों, उसे नाटक कहते हैं। जैसे–जयशंकर प्रसाद के 'ध्रुव स्वामिनी'

और 'स्कन्द गुप्त' तथा विशाखदत्त का 'मुद्रा राक्षस' इत्यादि प्रमुख नाटक हैं।

(७) एकांकी नाटक :—

जिस प्रकार उपन्यास का छोटा रूप कहानी है, उसी प्रकार नाटक का छोटा रूप एकांकी है। वह छोटा अथवा संक्षिप्त नाटक का रूप, जिसमें एक नाटक के सभी तत्व विद्यमान हों, उसे एकांकी नाटक कहते हैं। वर्त्तमान समय में एकांकी नाटकों का प्रचलन बहुत है। हरिकृष्ण प्रेमी सेठ गोविन्ददास और वियोगी हरि के बहुत से एकांकी प्रसिद्ध हैं।

(८) रेडियो नाटक :—

वे नाटक, जो विभिन्न अवसरों पर रेडियो स्टेशनों अर्थात् आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित किये जाते हैं, उनको रेडियो नाटक कहते हैं।

(९) उपन्यास :—

उपन्यास शब्द अंग्रेजी शब्द Novel का समानार्थवाची है। इसका शाब्दिक अर्थ है नवीनता। विभिन्न उपन्यासकारों ने इसकी विभिन्न परिभाषायें दी हैं। उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचंद के मतानुसार मानव-चरित्र का वह साहित्यिक एवं कलात्मक चित्र, जो जीवन के विभिन्न पहलुओं की विस्तृत व्याख्या करता है, उसे उपन्यास कहते हैं। जैसे-मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित 'गोदान,' 'गबन,' 'प्रेमाश्रम' और वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा रचित 'मृगनयनी' इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

(१०) कहानी :—

कहानी सुनना और सुनाना मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है। कहानी का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना मानव सभ्यता का। मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति, जिसे जिज्ञासा कहते हैं, उसी से कहानी के विकास को प्रेरणा मिली है।

वह गद्यमय रचना, जो मानव के अंतरंग एवं बहिरंग जीवन के अनेक रहस्यों को उद्घाटित करती है, उसे कहानी कहते हैं। जैसे-मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'नमक का दारोगा' और भगवतीचरण द्वारा रचित 'प्रायश्चित्त' प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

(११) निबन्ध :—

वह गद्यमय रचना, जिसमें लेखक किसी एक विषय को लेकर सविस्तार अपने विचार अभिव्यक्त करता है, उसे निबन्ध (Essay) कहते हैं । पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा बहुत से साहित्यिक निबन्ध लिखें गये हैं ।

(१२) समालोचनात्मक साहित्य :—

वह गद्यमय रचना, जिसमें लेखक किसी साहित्यकार की रचनाओं के गुणावगुणों पर निष्पक्ष भाव से अपना मत प्रकट करता है, उसे समालोचनात्मक साहित्य कहते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डा० श्यामसुन्दरदास हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक हैं, जिन्होंने हिन्दी में अनेकों समालोचनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं ।

प्रश्न ३ः—उपन्यास कितने भागों में विभक्त किये जा सकते हैं ? प्रत्येक का सविस्तार उल्लेख करिये ।

उत्तरः—प्रचलित मत के अनुसार उपन्यास के मुख्य भेद ३ माने गये हैं:—

(१) घटनाप्रधान (२) चरित्रप्रधान (३) ऐतिहासिक

१. घटनाप्रधान

घटनाप्रधान उपन्यास भी ३ प्रकार के होते हैं:—

(१) घटनाप्रधान, (२) जासूसी और साहसिक

(१) घटनाप्रधान उपन्यासः—

जिन उपन्यासों में उपन्यासकार घटनाओं को प्रधानता देता है और जिनमें अनेक घटनाओं का समावेश होता है, उनको घटनाप्रधान उपन्यास कहते है । जिज्ञासा उनका प्रधान गुण होता है और उनमें कौतूहल क्रमशः बढ़ता जाता है । जैसे चन्द्रकान्ता सन्तति घटनाप्रधान उपन्यास है ।

२. जासूसी उपन्यासः—

वह उपन्यास जिसमें जासूसों के अद्भुत क्रियाकलापों का वर्णन होता है, उनको जासूसी उपन्यास कहते है । जैसे हत्यारा का रहस्य, प्रेम की लाश,

(३) साहसिक उपन्यासः—

ऐसे उपन्यास जिनमें डाकुओं एवं षड्यंत्रकारियों के साहसपूर्ण कारनामों का वर्णन होता है उसे साहसिक उपन्यास कहते हैं।

(२) चरित्र प्रधान उपन्यासः—

चरित्रप्रधान उपन्यास २ प्रकार के होते हैं:—

(१) स्थिर चरित्र उपन्यास।

(२) गतिशील चरित्र उपन्यास।

(१) स्थिर चरित्र उपन्यासः—

जिन उपन्यासों में चरित्र घटनाओं का निर्माण करता है, परन्तु स्वयं अपरिवर्तित रहता है, उसे स्थिर चरित्र उपन्यास कहते हैं। जैसे—जैनेन्द्र का सुनीता उपन्यास स्थिर चरित्र उपन्यास कहा जा सकता है।

(२) गतिशील चरित्र उपन्यासः—

जिन उपन्यासों में चरित्र घटनाओं का और घटनायें चरित्र का निर्माण एवं परिवर्तन करती रहती हैं। ऐसे उपन्यासों में चरित्र और घटनाओं का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहता है, उनको गतिशील चरित्र उपन्यास कहते हैं।

(३) ऐतिहासिक उपन्यास

ऐसे उपन्यास जिनमें घटना तथा पात्र ऐतिहासिक होते है और जहां कथानक की सृष्टि भी किसी ऐतिहासिक वातावरण में होती है, उसे ऐतिहासिक उपन्यास कहते है।

प्रश्न ४:—ऐतिहासिक उपन्यास के कितने भेद होते हैं ? सोदाहरण समझाइये।

उत्तर:—ऐतिहासिक उपन्यास के मुख्य रूप से २ भेद होते हैं:—

(१) शुद्ध ऐतिहासिक।

(२) अर्द्ध ऐतिहासिक:—

(१) शुद्ध ऐतिहासिक—

(२) अर्द्ध ऐतिहासिक उपन्यासः—

ऐसे उपन्यास जिनमें इतिहास और कल्पना का समान योग रहता है, ऐसे उपन्यासों को अर्द्ध ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं। जैसे वृन्दावनलाल वर्मा का मृगनयनी अर्द्ध ऐतिहासिक उपन्यास है।

प्रश्न ५:—बाबू श्यामसुन्दरदास ने उपन्यास के भेद और उप-भेद किस प्रकार किये हैं ? विस्तृत विवेचन करिये।

उत्तर—उनके मतानुसार उपन्यास के निम्न भेद किये जा सकते हैं:—

(१) घटनाप्रधान (२) आश्चर्यजनक उपन्यास (३) सामाजिक उपन्यास (४) अंतरंग जीवन के उपन्यास (५) देश-कालसापेक्ष और निरपेक्ष उपन्यास

(१) घटना प्रधानः—

वास्तविक जीवन घटनामय होता है। जिस उपन्यास में घटनाओं का समन्वय होता है, उसे घटनाप्रधान उपन्यास कहते हैं।

(२) आश्चर्यजनक उपन्यासः—

ऐसे उपन्यास जिनमें उपन्यासकार का प्रधान उद्देश्य पाठक की कौतुहल-प्रवृत्ति को सदा जागृत बनाये रखना होता है, उसे आश्चर्यजनक उपन्यास कहते हैं। तिलस्मी और जासूसी उपन्यास इसी के अंतर्गत आते हैं।

(३) सामाजिक उपन्यासः—

जिन उपन्यासों में कथानक समाज के नर-नारियों के क्रियाकलापों और पारस्परिक व्यवहार से सम्बन्धित हो, उसे सामाजिक उपन्यास कहते हैं। ये सामाजिक अवस्था के सजीव चित्र होते हैं और उपन्यासकार इनमें सामाजिक समस्याओं जैसे विधवा विवाह, बाल विवाह, वृद्ध विवाह और अनमेल विवाह इत्यादि का हल खोजता है। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास गोदान और गबन इसी प्रकार के सामाजिक उपन्यास हैं।

(४) अंतरंग जीवन के उपन्यासः—

जिन उपन्यासों में उपन्यासकार मनुष्य के जीवन का नैसर्गिक रूप प्रस्तुत करता है, उसे अंतरंग जीवन का उपन्यास कहते हैं। इनमें व्यक्ति का जीवन

सम्बन्ध उनके मन बुद्धि और आत्मा से रहता है और भावना की तीव्रता के कारण उनमें उत्कृष्ट काव्य की छटा आ जाती है।

(५) देश-कालसापेक्ष और निरपेक्ष उपन्यासः—

जिन उपन्यासों में उपन्यासकार देश और काल दोनों का ध्यान रखकर चलता है, उसे देश काल सापेक्ष उपन्यास कहते हैं और जहां उपन्यासकार देश और काल की पूरी उपेक्षा कर देता है, उसे देश-कालनिरपेक्ष उपन्यास कहते है। जैसे बाणभट्ट कृत कादम्बरी देश-कालनिरपेक्ष उपन्यास है।

२ अध्याय

प्रश्न १:—हिन्दी के उपन्यासों के उद्गम और उनके क्रमशः विकास पर सविस्तार अपने विचार प्रकट करो।

उत्तरः—हिन्दी उपन्यासों के इतिहास को मुख्य रूप से ३ भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

(१) प्राचीन औपन्यासिक काल।

(२) मध्य औपन्यासिक काल।

(३) आधुनिक औपन्यासिक काल।

प्राचीन काल

सब से पहले ऋग्वेद में पुरुरवा और उर्वशी सम्वाद और यम-यमी सम्वाद हमारे उपन्यासों के आदिरूप कहे जा सकते हैं। इनमें कथानक, चरित्र और कथोपकथन इत्यादि उपन्यास के तत्व विद्यमान हैं।

फिर ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों आदि में उपन्यास के बहुत से चिन्ह मिलते हैं। इनमें बहुत सी ऐसी कथायें मिलती हैं। इनमें लेखक का मुख्य उद्देश्य नीति सम्बन्धी उपदेश देना ही है। उन्होंने सम्भवतः मानव समाज का पथ-प्रदर्शन करने हेतु ही इनकी रचना की होगी।

फिर पौराणिक युग के प्रधान ग्रन्थ रामायण और महाभारत में उपन्यास सम्बन्धी बहुत से तत्व मिलते हैं। वर्तमान काल के प्रगतिशील उपन्यासकारों ने अधिकतर इन्हीं दो ग्रन्थों में आई हुई कथाओं को अपने उपन्यासों की आधारशिला बनाया है।

इस प्रकार प्राचीन उपन्यासकार अथवा दूसरे शब्दों में उनको कहानी-लेखक कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। उनके साहित्य-सृजन के मुख्य उद्देश्य निम्न थे:—

(१) वीर-पूजा की भावना
(२) उपदेश भावना
(३) कौतहल-जागृति की भावना
(४) प्रेम-भावना

जैसे पृथ्वीराज के समय में चन्द्र बरदाई द्वारा लिखितपृथ्वी राज रासो। इसमें वीरपूजा भावना और प्रेम-भावना का प्राधान्य है। इसी प्रकार तोता-मैना, किस्सा साढ़े तीन यार, छबीली भटियारिन इत्यादि प्राचीन काल के उपन्यास कहे जा सकते है।

मध्य औपन्यासिक काल

सब से पहले संवत् १८५०—६० में इन्शा अल्लाखां ने रानी केतकी की कहानी लिख कर हिन्दी में उपन्यास कला का सूत्रपात किया। इसमें घटना-वैचित्र्य, प्रेम भावना और उपदेश भावना ही लेखक का प्रधान उद्देश्य रहा है। इसलिये इस कहानी को हिन्दी उपन्यासों का बीज कहा जा सकता है।

फिर भारत में अंगरेजों का राज्य आया। उसकी सर्वप्रथम स्थापना बंगाल में हुई। अतएव अंगरेजों की उपन्यास-कला से विशेष करके बंगाली लेखक और उपन्यासकार प्रभावित हुए। इस युग में बंगाल में उपन्यासकारों की बाढ़ सी आ गई। कई मौलिक उपन्यास लिखे गये और कई अंगरेजी उपन्यासों का बंगला में अनुवाद किया गया।

इस युग में बंकिमचन्द्र, शरत्चन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त और रवीन्द्रनाथ टैगोर इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यासकार हुए।

इस युग में हिन्दी के भी अनेक उपन्यासकार हुए, जिन्होंने बंगाली उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। इनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्री राधाकृष्ण दास, राधारमण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, रूपनारायण पाण्डेय और बाबू गदाधरसिंह आदि बहुत से लेखक हुए, जिन्होंने बंगाली उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया।

फिर हिन्दी में नवीन दृष्टिकोण को लेकर सर्वप्रथम "परीक्षा-गुरु" नामक उपन्यास लिखा गया, जिसके लेखक लाला श्रीनिवासदास थे। इस उपन्यास को पूर्ण उपन्यास नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसमें कलात्मकता का अभाव है : फिर भी उसमें आधुनिक उपन्यास के बहुत से अंग विद्यमान हैं।

इस समय में हिन्दी उपन्यासकारों का दृष्टिकोण कुछ बदला और उन्होंने सामाजिक और नैतिक उपन्यास लिखने आरम्भ किये।

इनमें पं० बालकृष्ण भट्ट का नूतन ब्रह्मचारी और 'सौ अजान एक सुजान' इत्यादि उपन्यास लिखे गये, जिन पर सामाजिकता का पूरा रंग चढ़ाया गया। "निस्सहाय हिन्दू" नामक उपन्यास सन् १८४० में लिखा गया, जिसकी भाषा परिमार्जित और पात्रानुकूल अवश्य है, परन्तु फिर भी इसे पूर्ण विकसित उपन्यास नहीं कहा जा सकता।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' इस समय के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास समझे जाते हैं।

फिर १६वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में कौतूहलप्रधान उपन्यास लिखे जाने लगे। इनकी लोकप्रियता यहाँ तक बढ़ी कि बहुत से लोगों ने इन उपन्यासों को पढ़ने की गरज से ही हिन्दी भाषा सीखी। इनमें देवकीनन्दन द्वारा लिखित "चन्द्रकान्ता सन्तति" विशेष प्रसिद्ध है। इसी समय कुछ प्रेमाख्यानक उपन्यास लिखे गये, जिसमें पं किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा रचित "प्रणयिनी-परिणय" तारा, लवंगलता, चपला, और त्रिवेणी इत्यादि प्रमुख हैं।

इसी समय कुछ थियेट्रिकल उपन्यास लिखे गये, जिनमें बाबू बृजनन्दन-सहाय द्वारा लिखित राधाकान्त, सौन्दर्योपासक, राजेन्द्र मालती इत्यादि उपन्यास प्रमुख हैं। इस प्रकार इन्होंने हिन्दी में भावनाप्रधान उपन्यासों की नई परम्परा स्थापित की।

आधुनिक औपन्यासिक काल

यह काल मुन्शी प्रेमचंद के समय से आरम्भ होता है। इस काल में सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में विशेष परिवर्त्तन हुए। इसके परिणाम-स्वरूप साहित्य भी इस हलचल से अछूता नहीं रहा। अब तक उपन्यासकारों का दृष्टिकोण रोमान्टिक, उपदेशात्मक और प्रेमकथाओं से परिपूर्ण था।

अब उपन्यासकारों ने जन-जीवन को अपनी पृष्ठभूमि बनाया। उनमें क्रान्ति का सिंहनाद सुनाई दिया।

इस युग के उपन्यासकार निम्न बातों से प्रभावित हुए—

(१) महात्मा गांधी के सत्याग्रह, अछूतोद्धार और असहयोग आंदोलनों से प्रभावित।

(२) पाश्चात्य विद्वानों के आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों से। जिनमें विशेष करके मार्क्स और फ्रायड का अधिक प्रभाव पड़ा।

(३) सामाजिक विषमता जैसे अमीर और गरीब, जमींदार और किसान और छूत और अछूत के भेदभाव से अधिक प्रभावित हुए।

(४) सामाजिक कुरीतियों के प्रति बदलते हुए दृष्टिकोण से।

मुन्शी प्रेमचंद इस युग के सर्वश्रेष्ठ कलाकार समझे जाते हैं। उन्होंने साहित्य मे भारतीय ग्रामीण और मध्यमवर्गीय जनता का नेतृत्व किया।

उनका उन्यास 'सेवा सदन' वेश्या जीवन की समस्या प्रस्तुत करता है। उनका दूसरा उपन्यास 'निर्मला' है, जिसका केन्द्रबिन्दु अनमेल विवाह और दहेज समस्या है। उनके दूसरे उपन्यास प्रेमाश्रम (१६२२), 'रंगभूमि' (१६२४), 'कायाकल्प' (१६२८) इत्यादि मे उन्होने हिन्दू-मुस्लिम समस्या के कई पहलुओं पर अपना दृष्टिकोण उपस्थित किया है। इसके अलावा इन्होंने अपने उपन्यासों में जमींदार, किसान, सूदखोर महाजन, निर्धन कर्जदार श्रमिक, पण्डे-पुरोहित, भूमिहीन किसान और भिखारी वर्ग का चित्रण किया है।

इसके अलावा नारी जीवन की विषमताओं पर भी आपने अपनी लेखनी चलाई है।

इस युग में आचार्य चतुरसेन शास्त्री, ऋषभचरण जैन, उपेन्द्रनाथ अश्क, जैनेन्द्र और उग्रजी दूसरे प्रगतिशील कलाकार हुए हैं, जिन्होंने विभिन्न विषयों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है।

चतुरसेन शास्त्री के मुख्य उपन्यास 'हृदय की परख' और 'व्यभिचार' है।

"दिल्ली के दलाल" "बुधुआ की बेटी "और ' शराबी" उग्रजी की रचनायें हैं, जिनमें नगर के चकलों, अनाथालयों, विधवाश्रमों, सेवासदनों, चोरों, गुण्डों और पथभ्रष्ट नौकरों का सांगोपांग चित्रण किया है।

वर्त्तमान समय में अब एक नये प्रकार के उपन्यास और लिखे जाने लगे हैं, जिनमें कलाकार नये नये साहित्यिक प्रयोगों का परीक्षण करता है। इस प्रकार के उपन्यास प्रयोगवादी उपन्यास कहे जाते हैं।

इनमें प्रमुख धर्मवीर भारती का "सूरज का सातवाँ घोड़ा", शिवप्रसाद मिश्र रुद्र का "बहती गंगा", गिरिधर गोपाल का "चांदनी के खण्डहर" इत्यादि वर्त्तमान समय में लिखे गये हैं, जिनमें कलाकार नवीन दृष्टिकोण लेकर उपस्थित हुआ है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में उपन्यास की कला दिनों-दिन विशेष उन्नत होती जा रही है।

प्रश्न २—प्राचीन उपन्यासों की विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन करो।

उत्तर—(१) इनमें भारतीय समाज के विभिन्न रूपों का प्रतिबिम्ब दिखलाई देता है। जैसे-सामाजिक अवस्था, नैतिक अवस्था और धार्मिक भावना।

(२) इन उपन्यासों में लेखकों ने भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य सभ्यता से अधिक श्रेष्ठ बतलाने का प्रयास किया है।

(३) इन उपन्यासों की घटनायें यद्यपि जीवन के धरातल से ही चुनी गई हैं, फिर भी लेखकों का ध्येय अधिकतर घटना-वैचित्र्य पर ही है।

(४) राजनैतिक उथल-पुथल के कारण लेखक चाहते हुए भी उपन्यास का इच्छित विकास नहीं कर सके और उन्होंने परम्परा के अनुसार उपदेशात्मक शैलीको ही अपनाया।

(५) यद्यपि इन उपन्यासों के पात्र मानवी हैं, परन्तु उनके चरित्र का पूर्ण विकास नहीं होने के कारण उनका वास्तविक रूप समाज के सामने नहीं आ सका।

(६) वर्णन शैली में भी उपन्यासकारों ने विविधता का आश्रय लिया। अधिकतर बोलचाल की भाषा में ही ये उपन्यास लिखे गये, फिर भी उनकी भाषा पूर्ण रूप से विकसित और परिमार्जित नहीं थी।

प्रश्न ३—मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों की विशेषताओं पर प्रकाश

उत्तर—१ इनके उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण किया गया है।

२. विशेष कर पात्र और कथानक जीवन के धरातल से लिये गये हैं।

३. पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक हुआ है, अतएव पाठक विशेष आकर्षित होते हैं।

४. विशेष कर उपन्यासों पर देश-काल की छाया है।

५. गांधीवाद से विशेष प्रभावित हुए हैं।

६. भाषा परिमार्जित, मुहावरेदार और पात्रानुकूल है।

७. अश्लीलता और प्रेमलीलाओं का अभाव है और जनजीवन के कल्याण की भावना का ही मुख्य दृष्टिकोण रहा है।

प्रश्न ४—उपन्यास और कहानी के अंतर को स्पष्ट समझाइये।

उत्तर—वास्तव में जो अंतर एक नाटक और एकांकी में है, वही अन्तर एक कहानी और उपन्यास म है। जीवनचक्र का वह पहिया जो सदैव चलता रहता है और उसमें जो घटनायें घटित होती हैं उनके मनोवैज्ञानिक वर्णन को उपन्यास कहते हैं। वास्तव में एक उपन्यास में उपन्यासकार का जीवन स्पष्ट रूप से झलकता है।

यद्यपि कहानी और उपन्यास का उद्देश्य तो एक ही होता है, फिर भी उसे व्यक्त करने की शैली दोनों में अलग अलग होती है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि कहानी मे किसी चीज को साधारण तौर से कहा जाता है तो उपन्यास में उसे बढ़ा-चढ़ा कर। यदि कहानी को उपन्यास की पुत्री और उपन्यास को उसकी माता कहा जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक उपन्यास बहुत सी कहानियों का संग्रह होता है, जिसमें पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है अथवा उसमें एक ही कहानी विस्तृत रूप से कही जाती है।

उपन्यास में कथानक चरित्र-चित्रण और कथोपकथन में उपन्यासकार स्वतन्त्र होता है। वह पात्रों का मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक चित्रण दिल खोलकर करता है, परन्तु कहानी में लेखक एक सीमित मर्यादा में बँधा रहता है।

उपन्यासकार अपने उपन्यास में जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त सभी घट-

प्रधान घटना अथवा उसके किसी एक अंग का वर्णन करता है। कहानी का क्षेत्र सीमित होता है, जबकि एक उपन्यास का क्षेत्र असीमित। उपन्यास जीवन की एक स्पष्ट प्रतिकृति होती है और यदि उपन्यासकार उसमें कथानक के साथ कई उपकथानक नहीं जोड़ता है तो उसकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, जबकि एक कहानी में उपकथानकों के लिए कोई स्थान नहीं होता है।

इस प्रकार यद्यपि एक अच्छी कहानी में उपन्यास के सभी तत्व विद्यमान होते हैं परन्तु बहुत छोटे रूप में। इस प्रकार एक उपन्यास कहानी का विस्तृत और कलात्मक रूप ही होता है।

प्रश्न ५—उपन्यास और नाटक के भेद को स्पष्ट समझाइये।

उत्तर—जीवन की वह कहानी जिसे नाटककार अपने पात्रों की सहायता से दर्शकों को सुनाता और दिखलाता है, उसे नाटक कहते हैं। उपन्यास में साहित्यकार प्रत्यक्ष रूप में जीवन की कहानी प्रस्तुत करता है तो नाटक में पात्रों के माध्यम द्वारा।

उपन्यास में एक कथानक के साथ बहुत से उपकथानक जुड़े रहते हैं और नाटक में एक कथानक प्रधान होता है और दूसरे उपकथानक गौण होते हैं।

उपन्यास कई परिच्छेद अथवा अध्यायों में विभक्त होता है, जबकि नाटक में कई अंक और दृश्य होते हैं।

उपन्यास में लेखक को चरित्र चित्रण, कथानक को बढ़ाने में पूरी छूट होती है और वह बहुत सी अनावश्यक बातें जोड़ कर उसके आकार को बढ़ाता है। परन्तु नाटककार को नाटक लिखते समय पूर्ण संयमित रहना पड़ता है और वह नाटक में उन्हीं तत्वों का समावेश करता है, जो दर्शकों को प्रिय लगें।

नाटक को रोचक बनाने के लिए उसमें यत्र-तत्र संगीतमय पद्यों का समावेश किया जाता है जब कि उपन्यास में इसका अभाव होता है।

नाटक में कथोपकथन ही प्रधान तत्व होता है जबकि उपन्यास में इसकी प्रमुखता कहीं नहीं दृष्टिगोचर होती है।

उपन्यास पढ़ने की वस्तु है जब कि नाटक देखने और सुनने की वस्तु है ।

इस प्रकार नाटक उपन्यास से पूर्ण रूप से भिन्न होता है ।

प्रश्न ६—उपन्यास के मुख्य मुख्य अंगों का वर्णन करो ।

उत्तरः—उपन्यास के मुख्य अंग निम्न हैः—

(१) Significant Title (शीर्षक)
(२) Plot (कथानक)
(३) Sub-plot (उपकथानक)
(४) Characteristic (चरित्र-चित्रण)
(५) Dialogues (कथोपकथन)
(६) Atmosphere (वातावरण)
(७) Local colour (स्थानीय रंग)
(८) The Style (शैली)

(१) शीर्षकः—

उपन्यास का शीर्षक उसके किसी प्रधान नायक अथवा उसकी किसी प्रधान घटना के नाम पर होना चाहिये । शीर्षक संक्षिप्त और आकर्षक होना चाहिये, जिससे कि वह सरलता से पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर सके ।

(२) कथानक :—

उपन्यास का कथानक उसकी आत्मा होती है । यह ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक अथवा दोनों का मिश्रण होता है । कथानक में समय, स्थान और वातावरण का ध्यान रखकर उसे गठित करना चाहिये ।

(३) उपकथानक :—

ऐसी छोटी छोटी अन्य घटनाएं जो मुख्य कथानक के आकार को बढ़ाने के लिये अथवा उसे रोचक बनाने के लिये जोड़ी जाती हैं, उसे उपकथानक कहते हैं । ये एक सांकल की कड़ियों के समान एक दूसरे से गुंफित रहती है अन्यथा उपन्यास की रोचकता मारी जाती है ।

(४) चरित्र-चित्रण—

उपन्यास के जो प्रधान पात्र एवं पात्रिकाएं होती हैं, उनके वर्णन को

मनोवैज्ञानिक एवं निष्पक्ष

दृष्टिकोण अपनाना चाहिये।

(५) कथोपकथनः—

पात्रों के पारस्परिक वार्ता के रूप में जो गद्यरचना की जाती है, उसे कथोपकथन कहते हैं। इसी से उपन्यास में नाटकीयता आती है।

(६) वातावरणः—

उपन्यास का वातावरण उसके कथानक से सम्बन्धित होना चाहिये। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास हैं जिनमें उन्होंने देशकाल और पात्रों के अनुकूल ही वातावरण को सृजन करने का प्रयास किया है।

(७) Local colour (स्थानीय रंग):—

उपन्यास में जिस देश की घटना का वर्णन किया जा रहा हो, वहाँ के जलवायु, प्राकृतिक पेड़-पौधे, मनुष्यों का धर्म, खान-पान, रहन-सहन और पोशाक आदि का वर्णन करना ही Local colour कहलाता है।

(८) Style (शैली):—

उपन्यास जिस ढंग से लिखा जाता है, उसे शैली कहते हैं। यह विभिन्न प्रकार की होती है। कहीं उपन्यासकार उसे प्रत्यक्ष ढंग से कहता है, कहीं परोक्ष रूप में कहीं आत्मकथा के रूप में।

३ अध्याय

प्रश्न १—मजदूरिन उपन्यास की कथा संक्षेप में लिखो।

उत्तरः—रैवती एक आठ की लड़की थी। जब उसने अपनी किशोरावस्था में प्रवेश किया तो वह एक दिन अपने ही खेत की डोलो पर किसी चिन्ता में निमग्न बैठी थी।

अकस्मात् उसका हमजोली साथी आया और उसने आकर उसकी दोनो आँखें अपने हाथों से मींच लीं।

रैवती ने पूछा, "कौन?"

साथी ने उत्तर दिया, "तू बता!"

रैवती कहने लगी, "क्या देगा?"

उत्तर में साथी बोला, मैं अपने आपको ही इसके लिये तुम्हें अर्पित करता हूं।

इस प्रकार रेवती की शादी हीरा के साथ हुई। दोनों नवदम्पति गांव में ज्यादा समय तक नहीं रह सके, क्योंकि उस गांव का इन्द्रियलोलुप जागीरदार रेवती का सतीत्व नष्ट करना चाहता था। वह उसके असाधारण रूपमाधुर्य पर मुग्ध था। उसने हीरा और रेवती को हर प्रकार से परेशान करना आरम्भ किया। इसलिये वे गांव छोड़ कर शहर में चले गये। गाँव में उनके एक पुत्र भी पैदा हुआ, जिसका नाम कीरत था।

जिस समय वे शहर में आये, उनकी अवस्था बड़ी ही शोचनीय थी। उनके पास खाने तक के लिये भोजन भी नहीं था। ऐसी अवस्था में एक मिल के मैनेजर ने हीरा को अपनी मिल में नौकर रख लिया और इस प्रकार दुःख के समय उनकी सहायता की।

हीरा एक सच्चा स्वामिभक्त और कर्त्तव्यपरायण सच्चा मजदूर था, जो अपनी मिल में duty के अलावा Over time काम करके अपने मालिक को खुश रखने का प्रयास किया करता था। फिर भी उसके बदले में मुश्किल से उसे इतना धन मिलता था, जिससे वह मुश्किल से अपने परिवार का पालन कर पाता था।

एक दिन बड़े जोर की बरसात हुई। सड़कों पर घुटनों तक पानी बह रहा था। लोगों का बाहर निकलना तक मुश्किल था। ऐसे भयानक समय में भी हीरा अपनी duty पर कार्य करने निकल ही पड़ा। रेवती ने कहा, "आज ऐसे भयानक समय में न जाइये।"

हीरा बोला, "यदि सब मजदूर ही तुम्हारी तरह सोचने लग जावें तो मिल का काम ही कैसे चले!"

अन्त में हीरा ऐसी भयानक मौसम में भी गया। रास्ते में भूकम्प के कारण उसका देहान्त हो गया और रेवती उसी दिन से असहाय और पति-विहीन हो गई।

अब रेवती की एकमात्र आशा कीरत ही था, जिस पर उसकी समस्त भावी आशायें टिकी हुई थीं।

जिस नगर में कीरत की माँ रहती थी, उसी नगर में वीरू दादा नामक एक व्यक्ति रहते थे। वीरू दादा जिनको लोग कामरेड दादा भी कह कर पुका-

रते थे एक ठाकुर के लड़के थे, जो कि उनकी एक पासवान के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ठाकुर साहब तथा उनकी माता दोनों का देहान्त होने पर दादा को अपने समाज से घृणा हो गई और वे भी उसी नगर में आकर रहने लगे, जिसमें कौरत की मां रहती थी। समाज के द्वारा तिरस्कृत होने के कारण उन्होंने साम्यवादी पार्टी में अपना नाम लिखा लिया था।

कौरत जब कुछ बड़ा हो गया तो कुछ मजदूरों द्वारा बहकाये जाने के कारण माँ से बिना पूछे ही पाली चला गया और वहां मिल में नौकर हो गया, परन्तु वहां दुर्भाग्य से उसके सीधे हाथ की अंगुलियां मशीन से कट गईं। बहुत दिनों तक कौरत की माँ को इसका पता न चला। आखिर एक पत्र द्वारा उसको अपने पुत्र की इस हालत का हाल मालूम हुआ। वह उसे वहां लाई और उसकी परिचर्या करने लगी।

जिस समय कौरत घायल अवस्था में था, उस वक्त एक दिन कामरेड दादा उसके घर आये। कौरत की माँ ने कहा, "आप मजदूरों के सहायक बनने का दम भरते हैं। अतएव आप अपनी पार्टी के द्वारा मेरे पुत्र को मुआ-वजा दिलाने का प्रयास करें, जिससे मैं उसकी पढ़ाई-लिखाई का इन्तजाम कर सकूँ।"

कई बार बीरू दादा के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से आकर्षित होकर कौरत की माँ ने उनके साथ शादी करने का विचार कर लिया। आखिर बीरू दादा ने वह मुआवजा मिल मैनेजर से पास करवा लिया। बीरू दादा को एक दिन कौरत की माँ का पत्र मिला, जिसमें यह संदेश था, "जो कौरत की पढ़ाई के लिए आपको रुपया मिला है, उसे आप अपने पास ही रहने दें और जब आपके घर में नववधू का आगमन हो, उस समय उपहार के रूप में वह रकम उसे समर्पित कर दी जावे।"

इस प्रकार इस उपन्यास की इतिश्री एक बड़े ही रहस्यपूर्ण ढंग से हुई है।

प्रश्न २—मजदूरिन उपन्यास के प्रथम परिच्छेद का सारांश अपने शब्दों में लिखो।

थे एक दिन कीरत की माँ की कोठरी पर गये। वहां कीरत की मां अपने घायल लड़के का सिर गोद में लिये हुए बैठी थी। उसने फटी दरी आगन्तुक के लिये बिछाई और कामरेड दादा उस पर आकर बैठ गये।

उसके पीले रंग की मुखाकृति से तथा नीरस अधरों से उसके हृदय का विषाद झलक रहा था। फिर कीरत की मां ने कहा, "आप कामरेड दादा कहलाये जाने पर भी हम मजदूरों की सहायता नहीं करते, इसका हमें बड़ा अफसोस है।

वीरू दादा ने कहा, "कामरेड" शब्द का अर्थ साथी होता है और यह शब्द हमने रूस वालों से सीखा है। रूस के मजदूर हमारे देश के मजदूरों के साथ गहरी सहानुभूति रखते हैं।

इस पर कीरत की मां ने कहा, "हमारे देश की गैर सरकार तो हमें आजादी देना नहीं चाहती, क्योंकि यदि वह भारतीय मजदूरों को आजादी दे देवे तो उनके देशवासियों का सारा कारोबार ठप्प हो जावे। यदि हमारे देश में रूस वालों का राज्य होता तो उनका भी रुख हमारे साथ ऐसा ही होता।

इस पर वीरू दादा बोले, "रूसी लोग साम्राज्यवाद के खिलाफ हैं, पूँजीपतियों के खिलाफ हैं और वे दुनियां में मजदूर राज्य कायम करना चाहते हैं इसीलिए वे सब देशों के मजदूरों की समस्या पर विचार करते है।

फिर कीरत की मां ने कहा, दादा! मेरे लड़के का सीधा हाथ मिल में बेकार हो चुका है, अतएव आप उसे मिल मैनेजर से मुआवजा दिलाने में मेरी मदद करो तो मैं आपका एहसान जीवन भर नहीं भूलूँगी।

फिर वह अपने जीवन की पुरानी घटनायें वीरू दादा को सुनाने लगी। उसने कहा, "जिस दिन मैं अपने पति के साथ इस नगर में आई थी, उस समय निराश्रित हालत में मिल मैनेजर ने हमको काम पर लगाकर जो हमारा उपकार किया था वह आजीवन नहीं भुलाया जा सकता। परन्तु उसके पीछे के दुर्व्यवहार से मुझे यह मालूम हो गया है कि उसमें कितनी मानवता है। फिर उसने अपने पति के दुःखान्त मरण का दुःखमय समाचार वीरू दादा को सुनाया।

होने लगा कि जिस पार्टी का सदस्य बनने की वह दुहाई दे रहा था उसका कार्य उसने वास्तव में कभी पूरा नहीं किया। क्योंकि ऐसी असहाय औरतों की सहायता करने वाला ही असली साम्यवादी समझा जा सकता है और उसकी आँखों से निरन्तर आँसू बहने लगे।

फिर वीरू दादा की कीरत की माँ ने भारत के स्वार्थी मनुष्य समाज के अत्याचारों के बारे में कहा। उसने कहा, "आज हिन्दू समाज में स्त्री की हालत वैसी ही है जैसी कि एक पिंजड़े में फँसे हुए तोते की। मनुष्य के अत्याचारों को चुपचाप सहन करने वाली और अपनी आहों को अपने दिल में दबाने वाली स्त्रियां ही इस हिन्दू समाज में सर्व-शिरोमणि समझी जाती हैं।"

फिर उसने कहा, "आज की भारतीय नारी के हृदय में प्रतिशोध की भावना ने उग्र रूप धारण कर लिया है। वह भयंकर आँधी के समान वर्त्तमान समाज-व्यवस्था को झकझोर देना चाहता है। अब वह सामाजिक बन्धनों को तोड़ कर नये समाज का निर्माण करने के लिए उत्सुक है। अब वह मनुष्य की गुलामी के बन्धनों को तोड़कर स्वतन्त्र होने के लिये लालायित हो रही है।"

फिर उसने समाज में नारी का जो वर्तमान रूप है उसका वर्णन किया। उसने कहा, "आज की नारी अपने बालकों के पालन, शिक्षण और स्वास्थ्य आदि का भार राष्ट्र के कन्धों पर डाल कर एक महान् उत्तरदायित्व से मुक्त होना चाहती है। इस प्रकार वह माता कहलाने का दावा नहीं रखती। वह अब पूर्ण रूप से पुरुष का भोग्य वस्तु बन गई है। अपने शरीर को सजाना और शृंगार की वस्तुएँ जुटाना ही उसके जीवन का मुख्य ध्येय बन गया है। इसी कारण हमारे समाज का दिन-प्रतिदिन पतन होता चला आ रहा है।

आज की नारी अपनी सज-धज से परियों को भी मात करती है। वह चाहती है कि मनुष्य हर समय उसकी फरियाद को पूरी करता रहे और भँवरे के समान उसके रूप-रस का पान करता हुआ उसके चारों तरफ मँडराता रहे। इस प्रकार आज की नारी निरंकुश और उच्छृंखल हो रही है। उसका मन

जिस समय वे दोनों इस प्रकार की बातें कर रहे थे उसी समय कीरत की नींद खुली और उसने अपनी मां से पानी मांगा। मां ने उसे पानी पिलाया और वीरू दादा से नमस्ते करने को कहा। बच्चे ने लज्जित होकर कामरेड दा को नमस्कार किया और अपने अपराध की क्षमा मांगी। फिर वे अपने घर की ओर चल दिये।

प्रश्न ३—मजदूरिन उपन्यास के दूसरे परिच्छेद का सारांश अपने शब्दों में लिखो।

उत्तर—एक दिन मजदूर यूनियन के ऑफिस में कुछ समस्याओं पर विचार करने के लिए एक सभा हुई। वीरू दादा भी उसमें सम्मिलित होने के लिये गये। उस दिन मौसम खराब था। आकाश में बादल मँडराये हुए थे और वर्षा की झड़ी लगी हुई थी।

उस दिन सभा में वीरू दादा पर उनके साथियों ने बहुत से व्यंग्य कसे, जिससे यह मालूम होता था कि उनके हृदय संकीर्ण विचारों से भरे हुए हैं और जब तक उनके हृदय में यह हल्कापन भरा रहेगा तब तक वे समाज का कुछ भी भला नहीं कर सकते।

फिर चलते २ उनको एक और घटना याद आ गई, जिससे यह प्रमाणित होता है कि साम्यवादी सदस्यों के हृदय कितने संकीर्ण हैं। वह घटना इस प्रकार थी, "एक दिन सब सदस्य आफिस में बैठे हुए थे। उसी समय एक अमरूद वाली नवयुवती उधर से होकर निकली। मेरे साथियों ने उस नवयुवती को अपने पास बुलाया और अमरूदों का सौदा करने का विचार किया। जब वह अमरूदों की टोकरी लेकर आई तो सब उसके अनुपम सौन्दर्य पर विमुग्ध हो गये और श्लेषपूर्ण वाणी में उससे विनोद करने लगे।

वह युवती कहने लगी, "बाबू, अमरूद बड़े मीठे हैं। ये खाई के अमरूद हैं।"

इस पर एक साथी ने कहा, "खाई जितनी गहरी होती है, अमरूद उतने ही मीठे होते हैं और वे उसके उन्नत उरोजों की तरफ देखने लगे।"

युवती कुछ लज्जित हो गई और उसने अमरूद तोलने शुरू किये। उस

प्रकार उन्होंने उसके सारे अमरूद तुला लिये। उनमें उन अमरूदों के लिये छीना-झपटी शुरू हुई। आखिर में वे सब अमरूद खा गये और उस बेचारी को उनकी कीमत चुकाये बिना ही ऊपर चढ़ गये।

उसने सोचा कि सभ्य समाज के सदस्य है, उसे उसके अमरूदों की कीमत तो अवश्य ही मिलेगी। उसने बहुत अनुनय-विनय की। आखिर उसे जो थोड़ी बहुत कीमत मिली, वही लेकर उनके दुर्व्यवहार पर उन बाबुओं को कोसती हुई वह बेचारी चली गई।

इस प्रकार कामरेड दा के हृदय में ये विचार चक्कर लगा रहे थे कि एक ओर तो हम समाज में से लुटेरों और ठगों का समूलोच्छेद करने का प्रयत्न कर रहे हैं और दूसरी ओर हम खुद ही गरीबों को इस प्रकार ठगने पर तुले हुए हैं। इस प्रकार हम समाज को कैसे ऊंचा उठा सकते हैं।

फिर वीरू दादा को उस समय का विचार आया, जिस समय उन्होंने कौरत की मां को मुआवजा दिलाने का प्रस्ताव अपने साथियों के सामने रक्खा था।

वास्तव में कौरत की मां एक विधवा और दुर्भाग्यपीड़ित एकाकी औरत थी और उसका इकलौता बेटा इस छोटी सी उम्र में अपाहिज हो गया था। इसीलिये वीरू दादा ने उसे मुआवजा दिलाने में सहयोग प्रदान करने का संकल्प किया था। लेकिन जब उन्होंने उसे मुआवजा दिलाने का प्रश्न सभा में रक्खा तो दूसरे साथी कहने लगे, "कौरत की मां कितनी ही ढलती क्यों न दिखाई दे, पर उसकी आंखों में पानी है जरूर। और फिर वे विनोदभरी निर्लज्ज हँसी से मेरी मजाक करने लगे, मानो मैं किसी वासनापूर्ण सम्बन्ध के कारण पार्टी के सामने कौरत की माँ के प्रस्ताव को रख रहा था।

परन्तु वीरू दादा कौरत की माँ से भली प्रकार परिचित थे और उन्होंने उसकी दयनीय दशा से प्रभावित होकर ही उसके प्रति सहानुभूति दिखलाने के लिये ही उसकी सहायता करने का दृढ़ संकल्प किया था। उसमें वासना की रंचक भी बू नहीं थी।

इस प्रकार अनेक विचारों में डूबे हुए घुटनों तक पानी में से होते हुए वीरू दादा अपने गरारे को दोनों हाथों से ऊँचा

अकस्मात् वे उसी गली में पहुंच गये, जहाँ कीरत की मां की कोठरी थी। नाले का गन्दा पानी, जिसमें सारे शहर की गंदगी भरी हुई थी, बड़ी तेज गति से बह रहा था और मजदूरों की कोठरियां उस सड़े पानी से भर गई थीं। वीरू दादा के मन में विचार आया कि एक ओर तो उन पूँजीपतियों की विशाल ऊँची अट्टालिकायें हैं और दूसरी ओर इन मजदूरों की ये नारकीय कोठरियाँ।

इसी बीच में वे एक बड़े से पत्थर से टकरा गये। और तुरन्त उन्होंने अपनी सहायता के लिये कीरत की माँ को सामने खड़ी पाया। वह हाथ पकड़ कर उनको अपने घर में ले गई और कहने लगी, "कामरेड दा" ऐसी बरसात में कहां चले जा रहे थे। देखिये, आपके पैर कितने गंदे हो गये हैं। यह कह कर उसने अच्छे पानी से कामरेड दा के पैर धोये, चप्पल धोये और उन्हें अपने घर में बैठाया।

कामरेड दादा सोचने लगे कि साथियों के व्यंग्य शब्दों से दुखी होकर कीरत की माँ के घर में नहीं आने का विचार किया था फिर भी एक ऐसी नारी जिसके हृदय में मेरे लिये इतना प्रेम और श्रद्धा है, उसकी उपेक्षा मैं किस प्रकार कर सकता हूँ।

फिर वीरू दादा ने कहा, "आज यूनियन के आफिस में आपके मुआवजे की बात चली थी। वापिस घर जाने का इरादा था पर गलती से इधर आ निकला यद्यपि इधर आने का कोई इरादा नहीं था।

फिर वीरुदा ने कीरत की मां से कीरत के स्वास्थ्य के बारे में पूछा। इस पर कीरत की मां बोली, "आज इसे भयानक बुखार आ गया था। अब कुछ हल्का पड़ा है।

इस पर वीरुदा ने पूछा, "इसे कुछ दवा दी अथवा नहीं।"

कीरत की मां बोली, "ऐसी मौसम में दवा लेने कैसे जाती?" तब वीरू दादा स्वयं बाजार गये और किसी मैडीकल स्टोर से कुनैन लेकर वापिस आ गये। उस समय बरसात बन्द हो गई थी।

कीरत की मां दरवाजे के बीच में ही खड़ी थी।

ज्यों ही वीरू दादा अंदर घुसे, वे एकाएक उससे टकरा गये।

कीरत की मां ने पुड़िया ली और उसे एक आले में रख दिया। फिर कीरत की मां अपने चंचल नेत्रों से कटाक्षपात करती हुई कामरेड दादा से कहने लगी "दादा, आज आप उदास दिखाई पड़ रहे हो।"

इस पर बीरू दादा बोले, "तुम्हारे मुआवजे के सम्बन्ध में बातचीत चली थी, परन्तु उससे मुझे अधिक निराशा ही हुई। इस पर कीरत की मां ने कहा, "मैं अपने लड़के का सौदा नहीं करना चाहती। जो कुछ भी मिल जायगा, उसी से संतोष कर लूँगी। फिर वह बोली, "मैं कीरत को पढ़ा–लिखा कर होशियार बना देना चाहती हूँ और इसे जैसे-तैसे वापिस ले जाना चाहती हूं।"

कामरेड दादा ने कहा, "तुम जाने की क्यों सोच रही हो? इसकी पढ़ाई लिखाई का इन्तजाम तो मैं यहां भी कर सकता हूँ।" इस पर कीरत की मां ने उत्तर दिया, "मां अपने पुत्र को खुद अपने हाथों से ऊपर उठाना चाहती है।"

कामरेड दादा कीरत की माँ के ये शब्द सुन कर उत्तेजित हो उठे और मनुष्य समाज को उसके नारी के प्रति किए जाने वाले दुर्व्यवहार के लिए कोसने लगे।

कीरत की मां बोली, "आज का मानव नारी को अपने लाभ और मन बहलाव के लिए उसे त्याग और सहनशीलता का पाठ पढ़ाता है। उसे खिला-पिला कर मोटा किया जाता है सीख दी जाती है, कि वह पिंजरे में ही फड़फड़ाये और मीठी बोली बोले।

लेकिन वह अपने सामाजिक बन्धनों से अकुला उठी है और वह उन्हें तोड़कर आज स्वच्छन्द वातावरण में उड़ना चाहती है।

फिर बीरू दादा कहने लगे, "वास्तव में हमारे समाज में नारी उपेक्षा की नजर से देखी जाती है। उसे माता-पिता का वह स्नेह नहीं मिलता जो उसके भाई को उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति में भी कोई हक नहीं दिया जाता। विवाह योग्य होने पर उसे किसी अनजान पुरुष के हाथों में सौंप दिया जाता है और उसे मनुष्य की इच्छाओं पर जीवित रहने के लिए मजबूर किया जाता है।

की रचना करनी है जहां स्त्री को समाज में पुरुष के समान ही बराबर अधि-कार प्राप्त हो।

फिर वीरु दादा ने कोरत की मां से पूछा, "क्या तुम कुछ पढी-लिखी हो ? यदि तुम किताबें पढना जानती हो तो मैं तुम्हें किताबें लाकर देऊँ।" यह सुन कर कोरत की मां बोली, "यद्यपि मैं पढी-लिखी नहीं हूँ तो भी मेरे लिए मेरा जीवन ही एक खुली पुस्तक है जिसमें मैंने बहुत से अनुभव प्राप्त किये हैं जो एक पढा-लिखा आदमी किताबें पढकर भी प्राप्त नहीं कर सकता।

फिर वीरू दादा ने अपनी जन्मदात्री मां का इतिहास सुनाते हुए यह बतलाया कि वह किस प्रकार समाज-विरोधी बना और क्यों उसने साम्यवादी पार्टी की सदस्यता स्वीकार की ?

कोरत की माँ के हृदय में वीरू दादा के प्रति श्रद्धा और प्रेम जागृत हो गया था क्योंकि वे मनुष्य होते हुए भी स्त्री समाज पर होने वाले अत्याचारों से दुखी थे और स्त्री समाज की दशा सुधारने के लिये उत्सुक थे। फिर कोरत की माँ ने ओजपूर्ण शब्दों में पूछा, "क्या आपकी शादी हो चुकी है ?"

इस पर वीरू दादा यह भाँप गये कि कोरत की माँ उनके साथ शादी कर लेने को इच्छुक थी और पूछे जाने पर उन्होंने उसे दूसरी शादी कर लेने की सलाह दी।"

इस पर कोरत माँ ने कहा "मैंने जो यह एक जोगिन का जीवन बिताना स्वीकार किया है, वह केवल मेरे पुत्र कोरत के कारण ही है। दूसरा मुझे ऐसे बहुत से साथी मिले जो मुझ से नाता जोड़ने के लिये तो इच्छुक थे, पर अपनी जिम्मेदारी का भार वहन करने के लिये उनमें से एक भी तैयार नहीं था।

फिर वीरू दादा ने कहा, "कोरत की माँ ! यदि तुम्हारे जीवन की सारी जिम्मेवारियों को वहन करने वाला साथी मिल जावे तो क्या तुम उससे शादी कर लोगी ?

इस पर वह खिलखिला कर हँस पड़ी और प्रेमभरी दृष्टि से उनकी

प्रश्न ४—तीसरे परिच्छेद का सारांश सरल भाषा में लिखो।

उत्तर—वीरु दादा रात्रि को सोये तो उनको एक स्वप्न आया। स्वप्न में उन्होंने देखा कि उनक कीरत की माँ साथ में शादी हो रही है। सारा विवाहमण्डप फूलमालाओं से सजा हुआ है और उनके विवाहोत्सव के उपलक्ष में एक भोज का आयोजन किया गया है। नव वधू ने आमंत्रित व्यक्तियों को हाथ मिलाकर विदाई दी। फिर वीरु ने देखा कि उनकी नव वधू सीढ़ियों पर ऊँची चढ गई और उनको पीछे छोड़ गई। फिर उन्होंने देखा कि वे कमरे में आगे बढ़े तो किसी वस्तु से टकरा गये और पूजा की थाली फर्श पर गिर पड़ी। पास में ही उनकी नव वधू घूंघट निकाले रो रही है। दरवाजा बन्द था। इतने में कुछ साथी उनको बधाई देने आये और दरवाजा खटखटाने लगे। उन्होंने कहा, "दरवाजा खोलो, नहीं तो इसे हम तोड़ देंगे। इस पर वीरुदादा ने कहा, "नहीं खोलूँगा। मैं नहीं जानता, यहाँ यह कैसे चली आई? और तुम मेरा अपमान करना चाहते हो!"

इस पर साथियों ने दरवाजा तोड़ दिया। फिर वीरु दादा की आँख खुल गई और उन्होंने अपने आपको खाट पर पड़ा पाया। सब रहस्य हो गया

फिर वीरु ने कीरत की माँ के यहां नहीं जाने का सकल्प कर लिया, लेकिन अकस्मात् एक दिन मिल से घर लौटते समय रास्ते में कीरत की माँ से उनकी फिर भेंट हो गई। उसने कीरत की बीमारी के बारे में पूछा। कीरत की माँ बोली, "अब ठीक है।" यह कहती हुई वह रवाने हो गई।

कुछ दिनों बाद जब कीरत की माँ का मुआवजा मंजूर हो गया तो वे सूचित करने के लिये उसके घर पहुंचे।

फिर वीरु दादा को उस घटना की याद आ गई, जबकि कीरत भागकर अपनी माँ से बिना पूछे ही पाली आ गया था और वहाँ उसके सीधे हाथ की उंगलियाँ कट गई थीं। उसकी सूचना वीरु दादा ने ही कीरत की माँ के पास पहुंचाई थी।

घटना इस प्रकार थी—

रात्रि का समय था। वीरु दादा गाड़ी पकड़ने के लिए प्लेट फार्म पर [illegible] रहे थे। चारों ओर अंधकार था। [illegible]

एक लालटैन हाथ में लिये हुए चला जा रहा है और उसके पीछे एक औरत रोती-चिल्लाती चली रही थी।

औरत ने कहा, "मैंने देखा दादा ! पर कहीं न मिला। तू निगाह रखना चला न जावे !"

इस पर पैटमैन ने कहा, "जाने भी दे। "तुझे मैं भूखों नहीं मरने दूँगा एक औरत तो घर में है ही दूसरी तू और सही।" इस प्रकार बातें करते करते वे अंधकार में विलीन हो गये।

फिर कीरत को माँ वीरू दादा को अपने जीवन के बाल्यकाल की घटनायें सुनाने लगी। उसने अपने जीवन की वह रहस्यमय कहानी सुनाई कि उसका विवाह हीरा के साथ किस प्रकार हुआ।

इतने में कीरत भी बाजार से लौट आया और दोनों उसकी बातें सुनते रहे।

अंत में कीरत की माँ ने कहा, "दादा! आप अपनी खोज में असफल रहे क्या ?"

वीरू दादा ने उत्तर दिया, "हाँ" और वे अपने घर की ओर रवाने हो गये।

फिर एक दिन जब वे पार्टी के ऑफिस में गये तो उनके एक मित्र ने जिसका नाम दिवाकर था उनको एक पत्र दिया।

उन्होंने उसे घर जाकर पढ़ा। वह पत्र कीरत को माँ ने उनके नाम भेजा था और उसमें यह इच्छा प्रकट की थी कि मुआवजे की रकम आप अपने पास ही रक्खें और विवाह के उपरान्त नव वधू को उस रकम से कुछ वस्तुएं खरीद कर उसकी ओर से भेंट कर दी जावें।

लेकिन वीरू दादा के घर में नव वधू आज तक नहीं आई और आज भी वह पत्र तथा रकम उनके पास धरोहर के रूप में पड़ी है।

---

४ अध्याय

प्रथम परिच्छेद

शब्दार्थ—

६९—जीवन की ढलती वेला=वृद्धावस्था का समय। प्राची=पूर्व दिशा। अस्पष्ट=धुंधला। शारीरिक शिथिलता=शरीर की कमजोरी।

७०—शून्य=एकाकीपन। दीर्घता=लम्बाई। स्मृति=याद। जागृत=ताजी बनाना। आच्छन्न=ढके हुए। धुरी=केन्द्रबिन्दु। रहस्यमय=आश्चर्य से भरा हुआ। अजस्र=निरन्तर रूप से बहने वाली। निर्झरी=छोटी नदी। चिर तुष्टि=सदा स्थिर रहने वाला सन्तोष। दुराव=भेदभाव। नतसिर=अपना मस्तक झुकाये हुए। अव्यक्त=जो प्रकट न की जा सके। व्यथा=मानसिक वेदना।

७१—हठात्=एकाएक। पलकसंपुट=पलकों के नीचे। नीरस=रस रहित। अंतर्दाह=हृदय की जलन अथवा पीड़ा। जड़ता=मूर्खता। दृष्टिपात करना=देखना। शंका=संदेह। कामरेड=साथी (अंगरेजी भाषा का शब्द है और अधिकतर रूसी मजदूर इस शब्द का प्रयोग अपने साथियों के लिये करते हैं।)

७२—ताज्जुब=आश्चर्य। गैर=पराये। संकुचित मनोवृत्ति=संकीर्णता के विचार (हृदय का छोटापन)। लफ्ज=शब्द। इस्तैमाल=प्रयोग। गैर सरकार=विदेशी सरकार। आजादी=स्वतन्त्रता। कारोबार=व्यवसाय। ठप्प होना=बन्द हो जाना। हमदर्दी=सहानुभूति।

७३—जिज्ञासा=किसी बात को जानने की इच्छा। निजाम=उद्देश्य। साम्राज्यलोलुपता=राज्य बढ़ाने की इच्छा। क्रूरता=निर्दयता। नृशंसता=पशुता अथवा राक्षसों जैसा व्यवहार। अत्याचार=जुर्म। ताण्डव नृत्य=विनाश करना। बीड़ा उठाना=दृढ़ संकल्प करना। साम्राज्यवादी=राजतंत्र में विश्वास रखने वाले। खयालात=विचार। उथल-पुथल=हलचल। इशारा=संकेत। बरबादी=सर्वनाश। फर्ज=कर्त्तव्य। धीरज=धैर्य।

७४—हृदय भर आना=कण्ठ गद्‌गद होना। दृष्टिपात=नजर डालना। असीम=जिसकी सीमा न हो। कृतज्ञता=उपकार को मानने का स्वभाव। नत-मुख=नीचा मुँह करके। कामना=इच्छा। कटु=कड़ुवी। उदात्त=दयालुता से युक्त। सत्तात्मक अंकुश=राज्य का नियंत्रण। भयत्रस्त=डर से सताया हुआ। आडम्बरपूर्ण=ढोंग से भरा हुआ। विस्मय-स्तब्ध=आश्चर्य के कारण शांत। कातर=दुखी। उद्‌गार=हृदय के विचार। स्वच्छन्दता=ऐसी स्वतन्त्रता, जिसमें मनुष्य को अपनी मर्यादा का ध्यान न रहे। अडिग=हमेशा स्थिर रहने वाली। संशय=संदेह। निर्निमेष=पलक बन्द किये बिना।

७५—मासूम=निराश्रय अथवा असहाय। जुल्म=अत्याचार। मंत्रणा=सलाह। पशुता=जानवरों के जैसा स्वभाव। बेबसी=विवशता। वारदातों=घटनाओं।

७६—अहसान=आभार। बरखा=बरसात। अवरुद्ध हो गया=रुक गया। जलजला=भूकम्प। कम्पन=कँपाने की शक्ति। अभिव्यक्ति=विचारों को व्यक्त करने का स्वभाव हृदय-स्पर्शी=हृदय पर प्रभाव डालने वाला। द्रवित होना=पिघल जाना।

७७—उर=हृदय। विस्मयविमुग्ध=आश्चर्य से मोहित हो जाना। अनु-भूत=अनुभव किया हुआ। विस्तृत=फैले हुए। अनायास=बिना परिश्रम किये हुए। अन्तस्तल=हृदय। सप्रभ=चमकती हुई। पैठकर=घुस कर। उन्मेष=खोल देना। गतिविधि=चाल। भास नहीं होना=ज्ञान नहीं होना। असह्य=जो सही न जा सके। वेदनायें=मानसिक व्यथा। प्रभञ्जन=आंधी। वातावरण=वायुमण्डल। विलोड़ित कर देना=मथ डालना। उपक्रम=बहाना।

७८—सदियों=शताब्दियों। बड़प्पन=गौरव। जूड़े=बन्धन। निगाह=दृष्टि। आँखें हँसना=आँखों से प्रसन्नता के भाव प्रकट होना। मोहक=मोहित करने वाली। ज्योति-किरणों=प्रकाश की रेखायें। विकीर्ण होना=फैलना। आकर्षण=खिंचाव। मुग्ध करना=मोहित करना। सुषमा=सुन्दरता।

७९—इन्द्रजाल=जादू के समान प्रभाव डालने वाला। पीत=पीला। दम घोटना=दुःखी करने वाला। कलङ्किनी=कुल को दाग लगाने वाली। अम-

८०—भैरवता=भयंकरता । मानवता की जमीन पर खड़ा करना=इंसानियत के विचार उत्पन्न करना । मखौल उड़ाना=मजाक करना । वाजिब=योग्य ।

८१—निर्बंध=बंधन से रहित । पसारा=फैलाव । अन्धभावुकता=आवेश में आकर किसी बात को बिना सोचे-समझे मानना ।

८२—जीवन-यापन=जिन्दगी बिताना । निहित=छिपी हुई । उत्थान=ऊंचा उठाना । योग देना=सहायता करना । भ्रामक=भ्रम में डालने वाली । इहलोक=इस लोक अथवा मृत्युलोक । सुख-सामग्रियां=आराम के साधन । भावी=आगे होने वाला ।

८३—महत्=बड़े । स्वाभाविक=अपने आप उत्पन्न होने वाली । वात्सल्य=वह प्रेम जो माता-पिता अपने बच्चे के प्रति दिखलाते हैं । तरल=बहता हुआ, चंचल । खिचाव=आकर्षण । शिशु=बालक । मृदु-कम्प=कोमल कम्पन । हेय=घृणा करने योग्य । मंगलदाता=कल्याण करने वाला । सविकार=दोषों अथवा बुराइयों से भरा हुआ । दुरवस्था=बुरी हालत । उदासीन=ध्यान नहीं देना अथवा उपेक्षा कर देना ।

८४—शान-शौकत=ठाठबाट । सजधज=शृंगार । मात करना=नीचा दिखाना अथवा परास्त करना । राह=मार्ग । फरियाद=पुकार । कार्यदक्षता=काम करने की चतुराई । बढ़ चढ़कर तारीफ करना=मिथ्या प्रशंसा करना । कठपुतलियाँ=दूसरों के इशारे पर नाचने वाली । बीड़ा उठाना=दृढ़ संकल्प करना । नाद=राग । सुवास=सुगन्ध ।

८५—लावा=वह द्रवित पदार्थ जो ज्वालामुखी फूटने पर उसमें से बह कर निकलता है । निर्बन्ध=जिसे कोई बांध नहीं सकता । मन की प्यास=मन की इच्छाएँ । निरंकुशता=किसी के भी अनुशासन को नहीं मानने का स्वभाव । [illegible] नहीं होने वाली । विषमता=भेदभाव अथवा ऊँच-नीच का विचार । [illegible] । स्वानुभूति=स्वयं अनुभव करने का स्वभाव । उन्माद=उन्मत्तता अथवा पागलपन । प्रवहमान=साथ में बहाकर ले जाने वाला ।

८६—जयनाद=जय जय की आवाज। सात्विक कामना=शांतिपूर्ण इच्छा।

दूसरा परिच्छेद

८७—घनता=गहराई। मसविदों=प्रस्तावों। निर्णय=फैसला दे देना। मनोविनोद=मनोरञ्जन। साभिप्राय=विशेष मतलब से। फब्तियाँ कसना=व्यंग्य कहना अथवा ताने मारना। नाज=अभिमान। कसक=हृदय की अंतर्वेदना। दंश करना=डसना अथवा काटना। अट्टहास=जोर से हँसना। समाधान=उपाय। स्तूप=ऊँचा खम्भा। अन्तरतम में विलीन हो जाना=हृदय में गायब हो जाना। प्रतिध्वनि=वापिस आने वाली आवाज। उद्वेगमयी=दुखी।

८८—मान्यता=स्वीकृति। निर्माण=रचना करना अथवा बनाना। क्रियात्मक=रचनात्मक। साम्यवाद=रूस की समता के आधार पर समाज-रचना की प्रणाली। विकासोन्मुख=उन्नति को प्राप्त होना। सर्वग्राही=सब कुछ ग्रहण करने वाले। मद=अभिमान का नशा। हल्केपन की मनोवृत्ति=संकीर्णता के विचार। मनोबल का स्रोत=आत्मशक्ति का झरना। चिरन्तन=हमेशा के लिये।

८९—उन्नत उरोज=उठे हुए स्तन। लक्ष्य कर=देखकर। श्लेषभरी वाणी=जिसका अर्थ कोई समझ न सके अथवा दो अर्थ रखने वाली। अवाक्=मौन।

९०—अनुनय-विनय=प्रार्थना। टीका-टिप्पणी=समालोचना। कोसती हुई=बुरा-भला कहती हुई। पार्टी सदर=मुख्य दफ्तर। हृदयगम्य=समझ लेना। असूल=सिद्धान्त ध्येय प्राप्ति=उद्देश्य को पूरा करने के लिये। वेवा=पतिविहीन।

९१—अपाहिज=अंगहीन। तुषारपात=पाला मार जाना। आशाओं पर तुषारपात होना=सब आशायें नष्ट हो जाना। हमदर्द होना=सहानुभूति प्रकट करना। मूलतः=वास्तव में। अनोखा तानावाना बुना=अनोखी कल्पनायें कीं। कर्मनाशा स्रोत फूट पड़ा=नदी के झरने के समान उनके हृदय से निरन्तर हँसी निकल पड़ी। मन-बहलाव=मनोरञ्जन। दंशक=डसने वाला।

९२—तुष्टि=संतोष। निंद्य=निंदा करने योग्य। दुःसाहस=खराब काम

स्पर्श=शरीर के छूने से। प्रसारित=फैलकर। अस्थिपञ्जर=हड्डियों का ढाँचा। झंकृत करना=आवाज पैदा करना। तन्द्रालोक=आलस्यमय संसार। सजग=सचेत। स्पन्दन=फड़कना। अन्तः मूर्त=हृदय साकार रूप धारण करके। प्रताड़ित=सताई हुई। रक्षार्थ=रक्षा करने के लिये।

९३—प्रवाह=बहाव। पूर्ववत्=पहले के ही समान। सुदूर=बहुत दूर। आश्रय=सहारा। आत्मनिमग्न=अपनी विचारमुद्रा में डूब जाता था। उधेड़-बुन=दुविधा मृगजल में डुबकियाँ लगाना=झूठी बात को सच्ची समझ लेना। उलट फेर=परिवर्त्तन। अनैच्छिक=बिना चाहा हुआ।

९४—अनचाहे अपदार्थ=ऐसी बुरी चीज जिसे लेने की कोई इच्छा न करे। निर्मम=ममता से रहित। उपेक्षा=अनिच्छा का भाव। तरबतर=भीगा हुआ।

९५—क्रीडा भूमि=खेल का मैदान।

९६—करसंपुट=हाथों की अंजलि। विस्फारित आँखें=फटीहुई आँखें नैसर्गिक=स्वाभाविक। निगूढ़=अत्यन्त गहरा। उच्चरित हो गये=निकल गये। बाह्य=बाहरी शरीर।

९७—आदेश=आज्ञा। द्वंद्व करना=झगड़ना। दुर्भावना=बुरे विचार। आत्मीयता=अपना समझकर। आवभगत=स्वागत करना। कपाट=किवाड़।

९८—निषिद्ध=रोकना। मधुर हासरेखा=मीठी हँसी के चिन्ह।

९९—छद्म गम्भीर मुद्रा=अपनी बनावटी आकृति से। परेशान=हैरान।

१००—नेत्र-भंग=टेढ़ी नजरों से देखना। अधरकंप=होठों का हिलाना। कुटिल रेख झलक रही थी=उसकी आँखों व होठों से ऐसा मालूम हो रहा था मानो वह उन पर मोहित हो गई थी। तर्कबुद्धि=न्यायबुद्धि। छिछोरपन=बालकपन अथवा मूर्खता का व्यवहार। महसूस=अनुभव करना। आत्म-तुष्ट=स्वयं संतुष्ट हुई सी। उपकरण=सामग्री। निर्माण करने=बनाने।

१०१—ध्वनि=आवाज। केन्द्रित करना=एक स्थान पर लगाना। प्रदर्शन=दिखाना। बेकली=बेचैनी। मेडीकल स्टोर=दवाइयों की दुकान।

१०२—अस्ताचल गामी=अस्त होने वाला। निरभ्र कक्ष=वह भाग जिसमें बादल न हों। लालिमा पुञ्ज=वह रंग जो सूर्य के अस्त होने के समय दिखाई देता है, उसे लालिमा... कहते हैं। [illegible]

कौषेय परिधान=गेरुआ रंग के वस्त्र । भव्यता=सुन्दरता ।

१०३—सशंकित=सन्देहयुक्त । भयत्रस्त=डर से सताई हुई । व्यक्त करना=प्रकट करना । प्रवीण=चतुर । चंचल कटाक्ष=तिरछी नजर से । कृशमुख=दुबला-पतला चेहरा ।

१०४—मुआवजा=जो धन किसी वस्तु के बदले में सरकार द्वारा दिया जाता है, उसे मुआवजा कहते हैं । उदारता=दयालुता । अपार=बेहद ।

१०५—खुद अपने हाथों से उठाना=स्वावलम्बी बनाना । बसर=निर्वाह । हेय=निन्दा करने योग्य । मनोवृत्ति=स्वभाव । अटल=स्थिर । विकार=बुराई अथवा दोष । स्तब्ध=चुप करने वाली । भावावेश=विचारों की उमंग में । अनिवार्य=आवश्यक अथवा जरूरी । मुक्त=स्वतन्त्र ।

१०६—प्राप्य=प्राप्त करने योग्य । ग्राह्य=ग्रहण करने योग्य । अनुभूति=अनुभव करने की चीज । विशृंखलित=बिखरी हुई अथवा अव्यवस्थित । अपरिपक्व=कच्ची । दारुण=भयानक । निर्धारित=बतलाई हुई । हक=अधिकार । मन बहलाव=मनोरञ्जन । इस्तेमाल=प्रयोग । सहनशीलता=कष्टों को सहन करने का स्वभाव । आश्रित=दूसरे के सहारे पर जिन्दा रहने वाली । तमन्ना=इच्छा

१०७—कुलटा=दुराचारिणी लुगाई । भ्रमित=चक्कर में डालने वाली । भुलावा देना=गलत रास्ते पर चलाने की कोशिश करना । सम्मान=प्रतिष्ठा अथवा इज्जत । आत्मतुष्टि मात्र=केवल उनकी आत्मा को सन्तोष दिलाने का साधन । सेविका=नौकरानी । महत्वाकांक्षा=बड़े बनने की इच्छा । सत्वहीन=जिसमें सार न हो । सहोदर=भाई । सम्मति=राय । उपेक्षा करना=ध्यान नहीं देना । अनजान=बिना जान पहचान के । साक्षी=गवाही । वचन देना=वादा अथवा प्रतिज्ञा मजबूर=विवश करना । सधवा=सौभाग्यवती स्त्री । बेबसी=विवशता ।

१०८—अथाह=जिसकी थाह नहीं । आत्म-दाह=अपने हृदय की जलन । रहनुमाई=दुहाई देने वाले । दुराग्रह=किसी बुरे काम के लिये हठ करना । प्रहार=चोट करना । निःसहाय=जिसकी मदद करने वाला कोई न हो । जड़ पकड़ना=स्थिरता से पकड़ना रूढिगत बन्धन=रूढ़ियों में बँधा हुआ । आत्मनिर्भर=

प्रस्फुटित=खिले हुए । बोधगम्य=किसी वस्तु को जानने लायक हो जाना । आंखें चार होना=अपने प्रेमी से मिलना । अपलक=बिना पलक बन्द किये देखना । सस्मित=कुछ हँसी के साथ ।

१०६—हृदयवेग=चित्त की आतुरता । मोहक=मोह में डालने वाला । मार्दव=अहंकार का त्याग । अभिप्राय=मतलब ।

११०—मनोवेश=चित्त की प्रेरणा । आग्रह=अनुरोध अथवा हठ । क्षुब्ध=दुःखी । तोल लेना=चित्तवृत्ति को आंक लेना । जन्मदात्री=जन्म देने वाली माता । सुखद=सुख देने वाली । पासवान=रखैल स्त्री · गोलोकवासी होना=मृत्यु को प्राप्त हो जाना । सरावो था=हूबा हुआ । रावले=ठाकुर साहब के रहने का मकान । कोख=गर्भ अथवा पेट । प्रेमभाजन=प्रेमपात्र ।

१११—द्वेषानल=द्वेष की अग्नि । कूटोक्तियों=चालाकी से भरे हुए वचन । साधन सम्पन्न=सब प्रकार के उपायों से युक्त । प्रबल विरोधी=कट्टर शत्रु । चिर मुक्ति=बहुत काल तक भोगी जाने वाली आजादी । सम्पर्क=साथ । खुशहाली=प्रसन्नता । सुलभ=आसानी से प्राप्त होने योग्य । प्रगतिगामी=उन्नति करने वाले । उन्मुक्त=स्वतन्त्र लास=मटक अथवा नखरा । वर्तुल=घेरा । एकांगी=एक ही ओर का । सीमित=मर्यादा में बंधा हुआ । जीवनहीन=निर्जीव । श्रद्धा=वह प्रेम जो छोटों के हृदय में अपने से बड़ों के लिये होता है ।

११२—आनत=झुके हुए । निष्ठा=विश्वास । आरोप करना=दोष लगाना अथवा मँढ़ना । मुँहफट=स्पष्ट वक्ता अथवा साफ कहने वाली ।

११३—रूढ़िवादिन=रूढ़ियों में विश्वास रखने वाली । वेदना भरे जीवन=दुखों से भरी जिन्दगी । उन्माद=पागलपन । तपन=जलाने की शक्ति ।

११४—समतल=एक ही धरातल पर स्थिर रहने वाली । ओजपूर्ण=आवेगमयी । कार्ल मार्क्स=रूस के एक नेता जो साम्यवाद के जन्मदाता थे । सम्बन्ध विच्छेद करना=अपना सम्बन्ध तोड़ लेना । भीषण परिस्थितियां=भयानक अवस्थायें । साहचर्य=अपनी स्त्री के साथ समानता का व्यवहार करना । प्रतीक=सूचक । सहिष्णुता=सहनशीलता । विचारमग्न=विचार में डूबा हुआ । अप्रासंगिक=जिसका प्रसंग न हो । हृदतंत्री=हृदय की वीणा । झंकृत करना=बजाना ।

११५—हृदय देख लेना=हृदय की परीक्षा करना। बड़भागिन=सौभाग्य शालिनी। बात का सूत्र पकड़ना=बात को समझ लेना। आक्षेप=दोष लगाना। अभिनव मत=नई राय। उल्लेखमात्र=वर्णन करने मात्र। सात्विक=शांत प्रकृति की। स्निग्ध भावना=प्रेम से भरे विचार। चिरन्तन अस्तित्व=बहुत काल तक संसार में किसी वस्तु की स्थिति बनाये रखना। आत्म-गौरव=आत्मा का बड़पन। गौमुखी=भोली भाली। अवरुद्ध=रोक लेना।

११६—बलात्=जबर्दस्ती। शुष्कता=रूखा व्यवहार। विकृतियाँ=खराबियाँ। पैनी नजर=तेज दृष्टि। एकपक्षीय=एक ओर का निर्णय करने वाले। चिन्तन=विचार। घात=प्रहार। आभा=चमक। विकीर्ण हो गई=बिखर गई। अन्तर्गत=भीतर। अवाक्=मौन।

११७—संयत करना=नियंत्रण रखती हुई। जिम्मेदारी=उत्तरदायित्व। जिम्मेदारी से मुँह मोड़ लेना=कर्त्तव्य का पालन नहीं करना।

११८—शुष्क=वह हृदय जिसमें प्रेम नहीं था। तरस उठा=लालायित हो गया। जीवन उत्सर्ग करना=जीवन का त्याग करना। मनोवृत्ति=मन की भावना। क्षणिक आवेग=थोड़ी सी देर ठहरने वाला जोश। दैहिक कामना=शारीरिक अभिलाषायें। विभीषिका=भयंकरता। एकाकी=अकेला हेतु=कारण। ज्योत्स्ना=चाँदनी।

तीसरा परिच्छेद

१२०—उद्वेग=व्याकुलता अथवा घबराहट। आवर्त्तन=आना और जाना। विलयन=विलीन हो जाना। महसूस=अनुभव होना। स्वप्नशृंखला=स्वप्नों की जंजीर अथवा लड़ी। उद्वेलित=चिन्तित। सुसज्जित=सजाया हुआ। आयोजन=व्यवस्था। वर=दूलह। वधू=स्त्री। आमन्त्रित व्यक्तियों=बुलाये हुए मनुष्यों।

१२१—दयनीय=जिसको देख कर दया आ जावे। मुखाकृति=चेहरे की बनावट। जीवनसंगिनी=जीवन भर साथ देने वाली। दुर्निवार=जिसका कठिनाई से निवारण हो सके। अरुणिम=लाल रंग के। अतृप्त आमन्त्रण=ऐसा बुलावा जिससे कभी संतोष न हो। भयभीत=डर से दुखी। विस्मय=आश्चर्य।

१२२—दुर्बलता=कमजोरी। अपने आपको खोजना=आत्मशुद्धि करना। आगाह करना=सावधान करना। आत्मप्रतारणा=अपनी आत्मा को कोसना। विकल=व्याकुल। क्षणिक उन्माद=क्षण भर ठहरने वाला पागलपन। चिर-सूत्र=वह विवाहरूपी बन्धन जिससे दोनों अनन्त काल के लिये बाँधे जावेंगे। स्थायित्व=स्थिरता। सम्मति=राय। हतबुद्धि=जिसमें सोच विचार करने की शक्ति नष्ट हो चुकी है।

१२३—उलाहना=उपालम्भ। कार्यव्यस्त=काम में लगा हुआ। आभास देना=दिखावा अथवा बनावटी मुद्रा बनाना। विकृत स्वर=बिगड़ी हुई आवाज। उन्मुक्त=स्वतन्त्र विचारों वाली। प्रतीक्षा=बाट देखना। खिल उठी=प्रसन्न हो गई। मृदु मुस्कान=कोमल मुस्कराहट। आशंका=संदेह।

१२४—सिलसिले=प्रसंग में। विच्छिन्न=टूट जाते हैं। अनुभूति=अनुभव। नपे तुले कदम बढ़ाना=बड़े संयम से चलना। विचारधारा में तल्लीन=विचार में डूबा हुआ। अनुनय विनय=प्रार्थना।

१२५—एहसान=आभार। बेवफा=एहसान को नहीं मानने वाली आँखों में धूल डालना=धोखा देना। विलीन=अदृश्य अथवा गायब। स्तब्ध=शांत। मिल एजेन्टों=मिल का माल विक्रय करने वाले जो अन्य स्थानों में जाकर मिल के लिये माँगपत्र प्राप्त करते हैं।

१२६—मधुरस्मृति=बाल्यकाल की घटनाओं की याद, जो बहुत प्यारी लगती है। किशोरकाल=जवानी का समय। हमजोली=समान आयु वाला। चौंक कर=आश्चर्य में भर कर। लोलुप नजर=ऐसी दृष्टि जिसमें कामवासना की भावना हो। हरकतें=करतूतें।

१२७—[illegible]=इच्छा। जाहिर की=प्रकट की। नेत्रकोर से देखना=टेढ़ी नजर से देखना। रिक्त कोना=ऐसा कोना जिसमें उनके लिये प्रेम के भाव नहीं थे। [illegible]।

१२८—[illegible] सूचक=मंजूरी की सूचना देने वाला। औत्सुक्य=उत्सुकता। [illegible]=[illegible]। दर्दनाक टीस=ऐसा दुःख जिसका वर्णन न किया जा सके। [illegible] नजर=वासनाओं से भरी हुई दृष्टि। मानमर्यादाओं=

का स्वभाव । द्रवित=पिघली हुई । असंभाव्य=जिसका होना संभव नहीं था । प्रतीकार=बदला । अल्प स्मृति=थोड़े समय तक रहने वाली यादगार । बरजोरी=विवशता । पैगाम=संदेश ।

१२६—बिछोह=वियोग । संगम=मिलन । प्रतीक=संकेत । तुला=तराजू । सर्वांग=समस्त अंग । उद्दाम=असीम । मनोवेग=हृदय की उत्सुकता । तथ्यों=सार-भूत बातों । रूढ़िग्रस्त=रूढियों के द्वारा बधा हुआ । विकलांग समाज=ऐसा समाज जिसके अंग रूढियों के कारण गल चुके हैं । एकतंत्रीय सत्तानिष्ठ=ऐसी सरकार जहां का शासन एक ही व्यक्ति के हाथ में है । जर्जरित सरकार=ऐसी सरकार जो जर्जर हो चुकी है । विरक्ति=प्रेम नहीं रखने की भावना । उकसाते=उत्तेजित करते हैं । अंध-पाशविक उन्माद=ऐसा पशुओं का सा दुर्व्यवहार जिसमें मनुष्य पागल और अंधा हो जाता है । खण्ड २ करने=टुकड़े करना । विध्वंस=विनाश । नव निर्माण=नये समाज की रचना । मंथर ऊर्मियों=स्थिर गति वाली लहरों । आलिंगनबद्ध होकर=चिपट कर । नव-रूप=नये आकार । दृष्टिबिन्दु=उद्देश्य । अन्तर्पट=हृदय । भस्मीभूत=नाश करना । ज्योतिर्मय=प्रकाशमान । सुवासित=सुगन्धित से युक्त । निर्धूम=धुएं बिना । जाज्वल्यमान थी=जल रही थी । अंतर्ज्योति हृदय में जलने वाली अग्नि । आत्मसंतोष=आत्मा तृप्त हो गई ।

१३०—सतर्कतापूर्वक=ध्यानपूर्वक । धरोहर=अमानत में रक्खी हुई रकम । खद्योत=जुगनू ।

समास भेद

पहला परिच्छेद

शून्यदीर्घता=कर्मधारय समास । अजस्र=अव्ययीभाव । निरतुष्टि=कर्मधारय । नतसिर=कर्मधारय । अव्यक्त=अव्ययीभाव । पलक-संपुट=ष० तत्पुरुष नीरस=अव्ययीभाव । अंतर्दाह=ष० तत्पुरुष । दृष्टिपात=ष० तत्पुरुष । मनोदशा=ष० तत्पुरुष । गैर सरकार=कर्मधारय । साम्राज्यलोलुपता=ष० तत्पुरुष । ताण्डव-नृत्य=कर्मधारय । नष्टभ्रष्ट=द्वंद्व । पूंजीपति=ष० तत्पुरुष । रक्तरंग=ष० तत्पुरुष । उथल-पुथल=द्वंद्व । मिल-मालिक=ष० तत्पुरुष । निर्दय=अव्ययीभाव, (निः+दय=निर्दय) विसर्ग संधि । सर्वनाश=कर्मधारय समास ।

तत्पुरुष । अहिंग= अव्ययीभाव । निर्निमेष=अव्ययीभाव, विग्रह-निः+निमेष=विसर्ग संधि) । वे-बाप=अव्ययीभाव । हृदय-स्पर्शी=तत्पुरुष । विस्मय-विमुग्ध=तृ० तत्पुरुष । पठन-पाठन=द्वंद्व । सभ्रम=अव्ययीभाव । गतिविधि=ष० तत्पुरुष । नर-नारी=द्वंद्व । नर-नारी-समस्यां=ष० तत्पुरुष । ज्योति-किरणों=ष० तत्पुरुष । इद्रजाल=बहुव्रीहि । पीतकमल=कर्मधारय । दुर्भाग्य=अव्ययीभाव, (दुः+भाग्य=विसर्ग संधि) । कटु-व्यंग्य=कर्मधारय । बन्धन-सूत्र=ष० तत्पुरुष० । भन्ध-भावुकता=कर्मधारय । उत्थान=अव्ययीभाव । इहलोक=अव्ययीभाव सुख-सामग्रियां =ष० तत्पुरुष । भावी-नागरिक=कर्मधारय । पालन-पोषण=द्वंद्व । महत्कार्य=कर्मधारय । मृदु-कम्प=कर्मधारय । दुरवस्था=अव्ययीभाव (दुः+अवस्था-विसर्ग संधि) । गान-झोकत=द्वंद्व । कार्य-दक्षता=ष० तत्पुरुष । ज्वालामुखी=बहुव्रीहि निरंकुशता=अव्ययीभाव, निः+अंकुशता=विसर्ग संधि । स्वानुभूति=अव्ययीभाव, (स्व+अनुभूति=दीर्घ संधि) । दिशा-दिशान्तर=द्वंद्व । जयनाद=ष० तत्पुरुष ।

द्वितीय परिच्छेद

मजदूर-यूनियन-आफिस=ष० तत्पुरुष । साभिप्राय=अव्ययीभाव । खिली-हँसी=कर्मधारय । प्रतिध्वनि=अव्ययीभाव । साम्यवाद=ष० तत्पुरुष० । दृष्टिकोण=ष० तत्पुरुष । सर्वग्राही=कर्मधारय । मनोवृत्ति=ष० तत्पुरुष । मनोबल=तत्पुरुष । उन्नत-उरोज=कर्मधारय । नपी-तुली=द्वंद्व । झीना-झपटी=द्वंद्व । अनुनय-विनय=द्वंद्व । ध्येयप्राप्ति=ष० तत्पुरुष० । तुषारपात=तत्पुरुष । ताना-बाना=द्वंद्व । कर्मनाशा=बहुव्रीहि । कर्मनाशा-स्रोत=ष० तत्पुरुष । मनो-विनोद=ष० तत्पुरुष । हंसी-दिल्लगी=द्वंद्व समास । मानस-हग्=ष० तत्पुरुष । तन-स्पर्श=ष० तत्पुरुष कम्पन-लहरियां=तत्पुरुष । अंग प्रत्यंग=द्वंद्व समास । चन्द्र-लोक=ष० तत्पुरुष । विस्मय-विमुग्ध=तृ० तत्पुरुष। अन्तःछवि=कर्मधारय । घन-गर्जना=ष० तत्पुरुष । आत्मनिमग्न=स० तत्पुरुष । विस्मय-विमुग्ध=तृ० तत्पुरुष । नव-नव=द्वंद्व । सुविधा-दुविधा=द्वंद्व । नेत्रभंग=ष०तत्पुरुष । कुटिल-रेख=कर्मधारय । तर्कबुद्धि=ष० तत्पुरुष । मेडीकल-स्टोर=कर्मधारय । लालिमा-पुंज=ष० तत्पुरुष । सद्यः स्नाता=अव्ययीभाव । नयनस्त=तृ० तत्पुरुष । रूप-माधुरी=ष० तत्पुरुष ।

वेश= तत्पुरुष। नवसमाज=कर्मधारय। रीति-रिवाज=द्वंद्व। रीति-नीति=द्वंद्व। लाज-शरम=द्वंद्व। महत्वाकांक्षा=कर्मधारय। आत्मदाह=ष० तत्पुरुष। दुराग्रह=अव्ययीभाव, (दुः+आग्रह=विसर्ग संधि)। आत्मनिर्भर=ष० तत्पुरुष। हृदयावेग=ष० तत्पुरुष, (हृदय+आवेग=दीर्घ संधि) सुख-दुख=द्वंद्व। जन्मदात्री=बहुव्रीहि। प्रेम-भाजन=तत्पुरुष। द्वेषानल=ष० तत्पुरुष। जीवन हीन=तृ० तत्पुरुष हवन-अग्नि=तत्पुरुष। लेन-देन=द्वंद्व। धर्मपत्नी=ष० तत्पुरुष। मौन-समाधि=कर्मधारय। आत्मगौरव=तत्पुरुष।

तीसरा परिच्छेद

स्वप्न शृंखला=ष० तत्पुरुष। विवाहोत्सव=ष० तत्पुरुष समास। मुखाकृति=ष० तत्पुरुष। दुर्निवार=अव्ययीभाव समास, (दुः+ निवार=विसर्ग संधि)। आत्म-प्रतारणा=ष० तत्पुरुष। चिर-सूत्र=कर्मधारय। हिलाते डुलाते=द्वंद्व। मिल एजेन्टों=ष० तत्पुरुष। मधुरस्मृति=कर्मधारय। नेत्र-कोर=ष० तत्पुरुष। अन्त द्वंद्व=ष० तत्पुरुष समास। उदासवृत्ति=कर्मधारय समास। मानसचक्षुओं=ष० तत्पुरुष समास। मिलनकाल=ष० तत्पुरुष समास। चिर विदा=कर्मधारय। नव निर्माण=कर्मधारय। मनोवेग=ष० तत्पुरुष। मंथर ऊर्मियों=कर्मधारय। दृष्टिबिन्दु=बहुव्रीहि। तपोवन=तत्पुरुष०। आत्मसंतोष=ष० तत्पुरुष। नव वधू=कर्मधारय।

५ अध्याय

प्रश्न १—रेवती का चरित्र-चित्रण करिये।

उत्तर—रेवती इस उपन्यास की प्रधान नायिका है। वह एक गरीब जाट की लड़की थी। बाल्यकाल से ही वह एक असाधारण सुन्दरी थी।

असाधारण सौन्दर्य—

जब वह किशोरावस्था को प्राप्त हुई, तब खेल ही खेल में उनका विवाह हीरा के साथ हो गया। उसकी असाधारण सुन्दरता ही उसकी विपत्तियों का मुख्य कारण बनी। गांव का जागीरदार उसका जानी दुश्मन बन गया। इसी

साहसी महिला—

शहर में जाने के बाद उस पर विपत्तियों का पहाड़ आकर टूट पड़ा, लेकिन वह असीम धैर्य के साथ सबको सहन करती रही। भूकम्प के कारण पति का देहान्त हो गया, बच्चे की सीधे हाथ की अंगुलियां कट गई। फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा और बच्चे के पालन-पोषण में लगी रही।

वर्तमान नारी समाज के विरुद्ध—

रेवती जिसका नाम उपन्यास में कीरत की मां भी है, वह वर्तमान भारतीय नारी समाज के विरुद्ध थी। उसने वीरू दादा को कहा, "भारतीय नारी ने अपने शरीर की सजधज और शृंगार को ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया है। भारतीय नारी का न अपने तन पर संयम है और न मन पर। इसी कारण आज समाज की दुर्दशा हो रही है।

वर्तमान नर समाज के विरुद्ध—

वह भारतीय नर समाज के भी विरुद्ध थी। उसने वीरू दादा से एक बार कहा था, "भारतीय नर समाज ने सदियों से नारी को अपनी गुलामी के बन्धनों में जकड़ रक्खा है। उसकी गति एक पिंजड़े में बन्द किये हुए तोते के समान है, जिसे पाल-पोस कर मोटा बनाया जाता है और उसे अपनी इच्छानुसार बोलना सिखाया जाता है। उसे धार्मिक परम्पराओं का भय दिखाकर रूढ़ियों के जाल में बांध रक्खा है। भाई को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार दिया जाता है और बहिन को नहीं।

वर्तमान समाज व्यवस्था को पलटने के पक्ष में—

कीरत की मां एक जलती हुई चिनगारी के समान है अथवा यों कहिये एक भयंकर आंधी के समान है, जो समस्त रूढ़ियों का नाश करके नवीन समाज का निर्माण करने के पक्ष में है।

वात्सल्य प्रेम—

कीरत की मां के हृदय में वात्सल्य प्रेम का अनुपम झरना प्रवाहित हो रहा था। वह चाहती तो बच्चे को छोड़कर किसी अन्य पुरुष के साथ शादी करके आनन्दमय जीवन बिता सकती थी, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। बच्चे की भलाई के लिये उसने एक जोगिन की तरह जीवन बिताया। उसने

मर्यादा को नहीं छोड़ा। इससे अधिक वात्सल्य प्रेम का अन्य उदाहरण क्या हो सकता है?

स्वात्माभिमान की भावना—

कीरत की मां एक स्वात्माभिमानी महिला थी। इसके कई उदाहरण दिये जा सकते है। जब बीरू दादा ने कहा, "आज मैंने आपके मुआवजे की बात पार्टी की सभा में चलाई थी। इस पर सब सदस्य मजाक करने लगे।" इस पर कीरत की मां ने आवेश में आकर कहा कि, "मैं अपने बच्चे को बेचना नहीं चाहती। आपकी पार्टी जो भी मुआवजा मुझे दिला देगी, उसी से मैं संतोष कर लूंगी।"

इस प्रकार कीरत की मां के चरित्र में अपूर्व साहस, धैर्य, वात्सलय प्रेम, त्याग और स्वात्माभिमान इत्यादि कई भावनाओं का मिश्रित रूप दृष्टिगोचर होता है।

प्रश्न २—बीरू दादा का चरित्र-चित्रण सक्षेप में करो।

बीरू दादा को दूसरे लोग कामरेड दादा कहकर भी पुकारते थे। ये एक गांव के ठाकुर के पुत्र थे, जो उनकी एक रखैल स्त्री के गर्भ से पैदा हुए थे। जब उनके माता तथा पिता दोनों का ही देहान्त हो गया, तब वे गांव को छोड़ कर नगर में आ गये थे क्योंकि दासीपुत्र होने के कारण लोग उन्हें घृणा की नजर से देखते थे। वे वर्त्तमान समाज व्यवस्था के विरुद्ध थे और नवीन समाज रचना के पक्ष में। इसलिये उन्होंने साम्यवादी पार्टी की सदस्यता स्वीकार की थी।

गरीबों के सहायक—

वे दयालु प्रकृति के थे और दीन-दुखियों की दिल से मदद करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। जब कीरत की माँ ने उन्हें मिल मैनेजर से कह कर मुआवजा दिलाने को कहा तो उन्होंने तुरन्त उसकी प्रार्थना को अपने पार्टी के सदस्यों के सामने रखा।

पाखण्ड के विरुद्ध—

उनका हृदय कांच की तरह तरल और स्वच्छ था। एक बार एक

उसने सब अमरूद तुलवा लिये। और बेचारी को सूखा ही टरका दिया। इस पर वीरू दादा को बड़ा दुख हुआ और वे कहने लगे कि एक ओर तो हम समाज में से ठगी और अत्याचार का नाश करने की दुहाई देते हैं और दूसरी ओर हम खुद ठग बन कर दूसरों को ठग रहे हैं। यह हमारे लिये कितनी शर्म की बात है।

सच्चरित्र—

वीरू दादा चरित्रवान् व्यक्ति थे। जब उन्होंने कौरत की माँ को मुआवजा दिलाने की बात पार्टी की मीटिंग में चलाई, तब पार्टी के सदस्यों ने वीरू पर यह आरोप लगाया कि उनका उस औरत के साथ अनुचित सम्बन्ध है, इसीलिये वे उसको मुआवजा दिलाने की सिफारिश करते हैं। इस आक्षेप से उनको बड़ा दुख हुआ और उसी दिन से उन्होंने उसके घर जाना तक छोड़ दिया।

चरित्र की दुर्बलता:—

उनके चरित्र में यत्र दुर्बलता भी नजर आती है। एक दिन उनके स्वप्न देखा, जिसमें यह देखा कि उनकी शादी कौरत की माँ के साथ हो गई है और वह नव-वधू के रूप में आगन्तुकों का स्वागत कर रही है। फिर वीरू दादा ने कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया। उनके दोस्त उन्हें बधाई देने आये। उन्होंने कहा, "फाटक खोल दो," नहीं तो हम इसे तोड़ डालेंगे।" दादा ने कहा, "मैंने उसे नहीं बुलाया। न जाने अपने आप यह कहाँ से आ गई! मैं जानता हूं कि तुम लोग मुझे अपमानित करने आये हो।" इससे स्पष्ट उनके हृदय की दुर्बलता दिखलाई देती है।

मजदूरों के प्रति सहानुभूति—

उनके हृदय में मजदूरों के प्रति गहरी सहानुभूति थी, वे मजदूरों के अधिकारों के लिये सदैव मिल अधिकारियों से लड़ने के लिये तैयार रहते थे। जब वे शहर की ऊँची २ शानदार इमारतों की तुलना मिल में काम करने वाले मजदूरों की कोठरियों से करते थे जो कि प्रत्यक्ष रूप से नरक का दूसरा रूप थीं। उस समय उनकी आँखों से आँसू बहने लग जाते थे।

साम्यवादी विचारधारा पर निर्माण करने के पक्ष में थे।

देवा का चरित्र:—

देवा एक पैंटमैन था। एक दिन रात्रि का समय था। वीरू दादा प्लेट फार्म पर घूम रहे थे। उन्होंने देवा को हाथ में लालटेन लटकाये हुये जाते हुए देखा। उसके पीछे एक स्त्री-रोती चिल्लाती हुई चली जा रही थी। औरत ने कहा, "दादा इधर से निकलें तो ध्यान रखना।" इस पर देवा ने कहा, 'तू अब उसके पीछे जाकर क्या करेगी! मेरे घर पर एक बहू तो है ही तू दूसरी और सही।"

इस घटना मे मालूम होता है कि वह एक दुराचारी चरित्रहीन व्यक्ति था। जिसका काम भोली-भाली औरतों को अपने पंजे में फंसाकर उनके चरित्र को भ्रष्ट करना ही था।

प्रश्न ४—कीरत का चरित्र-चित्रण करो।

कीरत रेवती का पुत्र था। इसका जन्म गांव में ही हुआ था। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो एक दिन अपनी मां से बिना पूछे ही वह पाली चला गया था। इससे मालूम होता है कि उसमें बालकपन और छिछोरपन अधिक था। वह बहुत भोले स्वभाव का बालक था।

वह अपनी माता से अधिक प्रेम करता था। वह चाहता था कि अपनी माता की गोद को रुपयों से भर दूं, परन्तु दुर्भाग्यवश वह ऐसा नहीं कर सका। क्योंकि मशीन से उसके सीधे हाथ की सब अंगुलियां कट गई थी।

प्रश्न ५—हीरा के चरित्र का चित्रण करो।

उत्तर—हीरा एक जाट किसान का लड़का था। उसकी उमर रैवती के समान ही थी और वह हमेशा बचपन के दिनों में साथ साथ खेला करते थे। उसकी शादी रैवती के साथ खेल ही खेल में हो गई थी।

वह बड़ा ही सीधा और सरल स्वभाव का व्यक्ति था। वह अपने कर्तव्य का पालन करने वाला था। एक बार बड़े जोरों की बरसात हो रही थी। सड़कों पर घुटनों तक पानी चढ़ रहा था। ऐसे अवसर पर हीरा की मां

ने कहा कि "आज मिल न जाओ। इस पर हीरा ने कहा 'यदि सभी इस प्रकार सोचने लग जावें तो मिल का काम कैसे चले।" और वह प्रकार की भयानक मौसम में ही काम पर चला गया। इससे उसकी कर्त्त परायणता का पता चलता है।

प्रश्न ६—मजदूरिन उपन्यास का शीर्षक उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त। इस पर अपने विचार स्पष्ट करो।

इस उपन्यास का शीर्षक बिल्कुल उपयुक्त है, क्योंकि इसका कथानक एक मजदूर की स्त्री की जीवन-घटना पर आधारित है। तीनों परिच्छेदों में लेखक ने एक मजदूरिन की आपबीती घटनाओं को ही अपने लक्ष्य में रक्खा है। उपन्यास का शीर्षक पढ़ते ही भारतीय मजदूर की जीवन की समस्यायें आँखों के सामने नाचने लग जाती हैं। किस तरह भारतीय मजदूरों को मिलों में Ower time कार्य करना पड़ता है। मिल मालिक किस प्रकार उनका शोषण करते हैं। उनके रहने के मकानों को देख कर तो नरकलोक भी लज्जित होता है। इन सब बातों का समावेश लेखक ने इस उपन्यास में बड़े ही रोचक ढंग से एक मजदूरिन को सामने रखते हुए किया है, इसलिये यह उपन्यास का शीर्षक जो लेखक ने चुना है—सर्वथा उपयुक्त है।

प्रश्न ७—मजदूरिन उपन्यास आपको क्यों अच्छा लगता है सकारण उत्तर दीजिये।

अथवा

मजदूरिन उपन्यास की विशेषतायें बतलाइये।

(१) मजदूरिन उपन्यास का कथानक जीवन के धरातल पर आधारित है, जिससे इसमें परियों की कहानी सी आश्चर्यमयता एवं रोमाण्टिक काव्यों की सी काल्पनिकता का अभाव है।

(२) इसमें लेखक ने वर्त्तमान समय की कई सामाजिक समस्याओं का सजीव चित्रण किया है—जैसे वर्त्तमान समय की नारी समाज की अवस्था और नर समाज के द्वारा नारी समाज पर होने वाले अत्याचारों का व